ज़िंदगी की साँझ

[मौलिक, सामाजिक उपन्यास]

लेखक
कमल शुक्ल

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

प्रथमावृत्ति] १९५६ [मूल्य २)

प्रकाशक
भारती (भाषा)-भवन
३८१० चर्खेवालाँ—
दिल्ली

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. सुधा-प्रकाशन, राजा बाज़ार, लखनऊ
४. राजस्थान-पुस्तक-मंदिर, त्रिपोलिया, जयपुर

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर में सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनके नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक—
रसिक प्रिंटर्ज़
५, संतनगर, करौल-बाग़
दिल्ली

5279

ज़िंदगी की साँझ

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

(सुधा-संपादक)

आधार

'जिंदगी की साँझ' का कथानक दो पीढ़ियों के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसमें एक है नई पौध और दूसरी पुरानी। त्रुटियाँ सबमें होती हैं, लेकिन किसी में कम और किसी में अधिक। जब विश्व के सभी व्यक्ति गुणदोषमय हैं, तो एकाएक किसी एक को दोषी कह देना उचित नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि बड़े की व्यर्थ की जिद और ऐंठ छोटे के जीवन को पनपने नहीं देती। आरंभ मार्ग-प्रदर्शक चाहता है, और चाहता है कुछ थोड़ा-सा अवलंब; किंतु इसके बदले में उसे मिलती है प्रतारणा और भविष्य के पथ को परिष्कृत करके न चलने की सीख। ऐसी स्थिति में नई पीढ़ी अपंग और विवश हो जाती है, और अहम् के गहरे रँग में रँगी हुई पुरानी पीढ़ी हाथ पकड़-पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगती है कि आओ, मेरा अनुकरण करो। इसी में तुम्हारी गति है।

प्रत्येक मनुष्य उत्थान चाहता है। कोई आवश्यक नहीं कि जिस राह पर बाप चलता है, उसी पर बेटा भी चले। यदि पिता संगीतज्ञ है, और चाहता ही नहीं, बल्कि पुत्र को अपना अनुगामी बनने के लिये बाध्य करता है, परंतु पुत्र साहित्य से रुचि रखता है, तो ऐसी स्थिति में दोनों के विचार नहीं मिल सकते। हर व्यक्ति के अपने निजी विचार होते हैं, और होता है जीवन का एक निश्चित उद्देश्य। समर्थ के सारे दोष छिप जाते हैं, और असमर्थ की खिल्ली उड़ाई जाती है। यह परंपरा तो

आदि काल की है। अहंवादी भावी के पथ में रोड़े अटका सकता है, और दूसरे की रुचि का गला घोंट सकता है। वह नई पौध के पाँवों में विवशता की बेड़ियाँ डाल सकता है, लेकिन नई पीढ़ी मौन नहीं तोड़ती। वह अपने जीवन में कोई नए प्रयोग नहीं कर सकती। अंत सामने आ खड़ा होता है। उगता हुआ पौधा मुरझाकर सूख जाता है, और उसके चंद दिनों बाद ही पुरानी पीढ़ी भी थककर सो जाती है।

इसी प्रकार संसार में अधिकांशतः निर्माण की अपेक्षा ध्वंस के कार्य संपादित होते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की यही आधार-शिला है। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच आज जो भेद की दीवार खड़ी हो गई है, उसे शांति, प्रेम और सद्भावना से मिटाना ही होगा। यह उपन्यास इसी प्रेरणा की एक कड़ी है। तभी भविष्य का मार्ग सुगम और सुस्पष्ट हो सकता है, और तभी स्थायी विश्व-शांति संभव हो सकती है।

७८/२५५, अनवरगंज, कानपुर
चैत्र-पूर्णिमा
८—४—१९५५

कमल शुक्ल

१

प्रभात में सूर्य की प्रथम किरण फूटते ही संपूर्ण नगर आनंदातिरेक से झूम उठा। प्रभात-फेरियाँ विश्राम पा चुकी थीं, और नगर में स्थान-स्थान पर बने कदली-पल्लवों, झाऊ और अशोक के पत्तों के तोरण सजाए जा रहे थे। प्रत्येक तोरण पर युग-पुरुष, एक-मात्र अहिंसा के पुजारी और शांति के अग्रदूत महात्मा गांधी का चित्र टँगा था। उसके एक ओर महात्मा बुद्ध और दूसरी ओर थे ईश्वर के बेटे यीशु मसीह। ऐसा लगता था, ये तीनों शक्तियाँ विश्व को शांति से भर रही हैं, और यह ध्रुव सत्य है, एक दिन स्थायी विश्व-शांति होकर ही रहेगी। बापू के चित्र के साथ दिवंगत सरदार पटेल और संसार की आँखों के तारे जवाहरलाल नेहरू के चित्र भी शोभा पा रहे थे। नगर का कोई पथ, गली और घर ऐसा न बचा था, जिस पर तिरंगा झंडा न लहराता हो। श्वेत, पीत और हरित परिधानों की गोद में शयन कर रहा अशोक-चक्र पुरातन स्वर्ण-युग और ऋद्धि-सिद्धि का प्रतीक बन इस सुप्त युग को जागृति और चेतना का संदेश दे रहा था।

पूरा दिन नगर की सजावट और प्रकाश की व्यवस्था करने में व्यतीत हो गया। साँझ आई। शताब्दियों तक परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ देश स्वतंत्रता का चोगा पहनकर मुस्करा उठा। प्रजा-तंत्र-राज्य की भला किसे न प्रसन्नता होगी? अपने घर में अपना राज्य सभी चाहते हैं। स्वत्व पाकर जनता

का हृदय आनंद से आलोड़ित हो रहा था। ऐसा लगता था, विश्व के ऐश्वर्य और सुख-समृद्धि की झोली आज भारत में आकर खुल पड़ी है।

कानपुर के सभी नागरिक आज प्रसन्न थे, मुदित थे, और अपने में फूले न समाते थे। क्यों न होते? आज उनके बापू का जन्म-दिवस था। सर्व-साधारण को विदित था, आज गांधी-जयंती है। प्रत्येक चौराहे पर विद्युत के रंग-बिरंगे बल्बों के बंदनवार बँधे थे। कहीं 'स्वागतम्', कहीं 'शुभागमन' और कहीं पर 'महात्मा गांधी जिंदाबाद' के, इंद्रधनुषी बिजली के कुमकुमे लकड़ी की तख्तियों पर लगे तोरणों के मध्य फूटे पड़ रहे थे। उनके बहुरंगी प्रकाश पर सभी की आँखें टिककर रह जातीं। दूकानों पर श्वेत, हरे और लाल रंग के रॉड्स अपना लुभावना, प्रखर प्रकाश डाल रहे थे। लाउड-स्पीकर हर पचास और साठ क़दम के व्यवधान पर कर्णप्रिय संगीत प्रसारित कर रहे थे। रेडियो में कहीं-कहीं हिंदी में समाचार हो रहे थे। बापू को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की जा रही थीं। पूरा नगर रोशनी देखने के लिये उमड़ पड़ा। भीड़ के रेले के रेले ठेलमठेल करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

माला अपनी चाची के साथ रोशनी देखने घर से निकली ही थी कि उसके कानों में लाउड-स्पीकर की मधुर संगीत-ध्वनि पड़ी—

"सुनो-सुनो ऐ दुनियावालो, बापू की वह अमर कहानी;
वह बापू भी पूज्य है उतना, जितना गंगा मा का पानी।
सुनो..................।"

माला का मन-मयूर हर्ष और उल्लास से नाच उठा। वह चाची का हाथ पकड़कर आगे बढ़ी। सड़कों पर अपार जन-समूह उमड़ा पड़ रहा था। केवल सिर ही सिर दिखाई दे रहे थे। क्या

बाल और क्या वृद्ध, सभी के मन में नगर का प्रकाश देखने की तीव्र उत्कंठा थी। सभी लालायित थे, और अपने मन में औत्सुक्य लिए, भीड़ को चीरते आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

माला की प्रौढ़ा चाची भीड़ की रेल-पेल से घबरा उठीं। वह माला को थाली की भाँति आगे किए धीरे-धीरे चल रही थीं, पर बढ़ती हुई भीड़ में उन्हें स्वयं अपने को ही सँभालना कठिन हो गया। वह माला का हाथ खूब कसकर पकड़े हुए थीं, और माला उनका। पीछे से भीड़ का एक रेला आया, और वह सँभलते-संभलते गिर पड़ीं। माला सहम गई। वह चाची को भरपूर शक्ति से उठाने का उपक्रम करने लगी। लेकिन सब व्यर्थ रहा। भीड़ का दूसरा रेला आया। उसने माला को चाची से पृथक् कर दिया। उसके पैर वहाँ पर टिके न रह सके। भीड़ के साथ वह भी धिकलती हुई पर्याप्त दूरी पर जा लगी।

चाची का साथ छूट गया। उनका क्या हाल होगा? वह भीड़ के पैरों के नीचे बुरी तरह कुचली जा रही होंगी! यह ध्यान आते ही माला के माथे पर पसीना आ गया। वह पीछे लौटने को उद्यत हुई, किंतु जितना ही वह पीछे जाने का प्रयास करती, उतना ही भीड़ के धक्के उसे आगे हटाते जाते। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा, और वह बुरी तरह अकुलाहट के वशीभूत हो अपनी प्रज्ञा खो बैठी।

चाची भीड़ में दबकर बेहोश हो गईं, पर फिर भी भीड़ उन्हें कुचले जा रही थी—रौंदे जा रही थी। रामसोहन की दृष्टि उन पर पड़ी। उसने अपने साथियों का सहारा लिया, और अत्यंत कठिनाई से उन्हें भीड़ के बाहर निकाल लाया। पानी के छींटे मुँह पर पड़ते ही चाची ने आँखें खोल दीं, और जब पानी के दो घूँट उनके गले के नीचे उतरे, तब शांत होकर धीरे-से

राममोहन के आनन पर दृष्टि टिकाकर बोलीं—"माला कहाँ है ?," और यह कहने के साथ ही इधर-उधर निहारने लगीं ।

अब राममोहन की समझ में आया कि इस स्त्री के साथ इसकी कोई आत्मीया भी थी, जो भीड़ में बिछुड़ गई है । उसने धीरे से सांत्वना-पूर्ण शब्दों में पूछा—"कौन माला ? यहाँ तो कोई नहीं है ।"

"क्या कहा ? कोई नहीं है ! आखिर माला कहाँ गई ?" कहने के साथ ही चाची उठ बैठीं, और पागलों की भाँति प्रलाप करने लगीं—"हाय ! कहाँ चली गई मेरी बच्ची, मेरी माला ! हाय ! रानी, तू कहाँ खो गई ?"

"माला आपकी लड़की है क्या ?" राममोहन ने सहानुभूति प्रकट की ।

"लड़की नहीं, भतीजी है भइया ! पता नहीं, कहाँ होगी वह ? क्या हाल हो रहा होगा भीड़ में उसका ?" चाची का स्वर अकुलाहट और व्यग्रता से ओत-प्रोत हो रहा था ।

"आप चिंता न कीजिए । मैं उसका पता लगाता हूँ । आप धैर्य रखिए ।" यह कहकर राममोहन ने चाची को आश्वासन दिया ।

राममोहन ने अपने साथियों की ओर देखा, किंतु वे उसका आशय समझकर भी वहाँ पर टिक न रह सके । उलटे उसका उपहास करते हुए आगे बढ़ गए । वे किसी भी भाँति गांधी-जयंती का प्रकाश देखने का लोभ संवरण न कर पाए ।

राममोहन अकेला रह गया । उसने कुछ क्षण तक होंठ पर उंगली रखकर विचार किया, और फिर माला की चाची को एक ओर एकांत में बैठाकर वह माला का पता लगाने के लिये आगे बढ़ा ।

जिस व्यक्ति की शक्ल तक कभी देखी न गई हो, उसे उस-

ड़ते जन-समुद्र में खोज निकालना टेढ़ी खीर थी। राममोहन ने भरसक प्रयत्न किया, और 'माला' के नाम को उच्च स्वरों में पुकारता, भीड़ को चीरता-फाड़ता आगे बढ़ता गया, किंतु उसकी आवाज़ जन-कोलाहल में विलीन होकर रह जाती। वह हताश हो गया। दो घंटे के कड़े परिश्रम के उपरांत भी उसे सफलता के चिह्न तक दृष्टिगोचर नहीं हुए।

रात्रि के दस बज गए थे। भीड़ अब भी पथ पर पूर्ववत् थी। राममोहन अपने में निराशा लिए माला की चाची के पास लौट आया। उसके इस सूने प्रत्यावर्तन को देखकर चाची का हृदय धक्-से रह गया। वह इस तरह घबरा गईं, मानो किसी ने उनका गला दाबकर वर्षों से संचित की हुई निधि छीन ली हो।

"आप घर चलिए मा जी! हो सकता है, माला आपको न पाकर वहीं पहुँच गई हो।" राममोहन ने अपराधी की भाँति चाची से कहा।

"हाँ।" कुछ सोचकर वह बोलीं, और फिर एक निःश्वास छोड़कर कहने लगीं—"यह भी संभव हो सकता है।"

राममोहन का सहारा लेकर चाची खड़ी हुईं, और पथ पर सर्वत्र दृष्टि दौड़ाती हुई चलने लगीं। राममोहन उनके साथ था।

घर में ताला लटक रहा था। चाभी चाची की धोती के एक छोर में बँधी थी। उन्होंने पहले सब ओर निगाह दौड़ाई, और फिर चाभी खोलकर राममोहन के हाथ में देती हुई बोलीं—"अभी तक नहीं आई। पता नहीं, कहाँ रह गई मेरी बच्ची! लो भइया, तनिक ताला तो खोल दो।" यह कहते-कहते उनकी आँखों से दो बूँद आँसू चू पड़े।

राममोहन ने ताला खोला। चाची धोती के छोर से आँसू

पोंछती हुई अंदर प्रविष्ट हुई। राममोहन सामने आकर विनम्र स्वर में बोला—"अच्छा, तो अब मैं चलूँ मा जी ?"

"कैसे कहूँ भइया ! आज अगर तुम न होते, तो मैं यमलोक न जाने कब की पहुँच गई होती। युग-युग जियो लाल ! भगवान् तुम्हें खूब ऋद्धि-सिद्धि दें। जाओ, तुमने तो आज की रोशनी भी नहीं देखी।" गद्‌गद् कंठ से चाची ने कहा।

राममोहन धीरे-धीरे घर के बाहर निकल आया। चौखट पर आते ही एक युवती से वह टकरा गया। युवती हाँफती और घबराई चली आ रही थी। राममोहन से टक्कर लगते ही वह चौंक उठी, और दो क़दम पीछे हटकर, भय-त्रस्त स्वर में, बोली—"कौन ?"

राममोहन भी अचाकचा उठा। यकायक उसके मुँह से यही निकल पड़ा—"क्या आपका नाम माला है ?"

"जी, कहिए ! आप...?"

अभी माला की बात पूरी भी न हो पाई थी कि राममोहन घूमकर खड़ा हो गया, और धीरे से बोल उठा—"आपकी चाची भीड़ में बुरी तरह दब गई थीं।...मैंने आपका बहुत पता लगाया, पर सब व्यर्थ रहा। अभी-अभी चाची को लिवाकर लाया हूँ।"

"यह एहसान मैं आपका जीवन-पर्यंत न भूल सकूँगी। बहुत-बहुत धन्यवाद है आपको।" माला ने परिस्थिति समझकर राममोहन से इस भाँति दुनियादारी की बात कही, और फिर द्रुत गति से 'अच्छा नमस्ते' कहती हुई अंदर जाने लगी।

तभी राममोहन ने उसे टोक दिया। वह सहानुभूति-पूर्ण शब्दों में बोला—"सुनिए !"

माला रुक गई। राममोहन कहने लगा—"चाचीजी को गरम-गरम दूध या चाय पिलाइए, और यदि आपसे बन पड़े, तो रुई के पहल लेकर उनके बदन के जोड़ों पर हल्का-हल्का सेंक कर दीजिए। इससे वह आराम से सो जायँगी। आपको पता नहीं, वह किस तरह कुचली गई हैं।"

"मैं अभी अँगीठी जलाती हूँ।" कहकर माला एक क्षण के लिये रुकी, और फिर कुछ सोचती उसकी ओर उन्मुख होकर बोली—"आइए, आप भी बैठिए! चाय पीकर जाइएगा।"

"नहीं। बस अब चलने दीजिए। देर हो रही है। इस समय ग्यारह से कम न बजे होंगे।" राममोहन ने माला का अनुग्रह स्वीकार नहीं किया। वह चलने का आयोजन कर आगे क़दम बढ़ाता हुआ दोनों हाथ बाँधकर बोला—"नमस्ते।"

"सुनिए तो।" माला ने उसे रुकने के लिये विवश कर दिया।

राममोहन वहीं पर ठहर गया, और कुछ कहने के लिये मुँह खोले, इसके पूर्व ही माला तत्परता के साथ बोल उठी—"देर कितनी लगती है। अभी चाय तैयार होती है। आइए, बैठिए।"

राममोहन कुछ भी जवाब न दे सका। वह माला की ओर असमंजस और संकोच-भरी दृष्टि से देखने लगा, लेकिन माला अतीव मृदु स्वर में तब तक पुनः कहने लगी—"आइए! आइए न! आप तो खड़े हैं।"

अब राममोहन को संकोच त्यागकर माला के पीछे-पीछे चल देना पड़ा।

माला की चाची राममोहन को देखकर अत्यंत प्रसन्न हो उठीं। साथ ही उन्हें इस बात पर भी गर्व हो आया कि माला कितनी व्यवहार-कुशल है! वह स्नेह-विगलित वाणी में माला की

ओर उन्मुख होकर बोलीं—"अरी पगली ! तुझे क्या पता कि मेरा क्या हाल हुआ ! कहाँ रह गई थी तू ?"

"अब यह न पूछो चाची !" कहकर मुस्कराती हुई माला अँगीठी में कोयले डालने लगी।

"खड़े क्यों हो ? बैठ जाओ, भइया !" चाची ने यह कहकर राममोहन को सामने पड़े मोढ़े पर बैठने का संकेत किया।

वह सकुचाता हुआ बैठ गया, और नीची दृष्टि कर कन-खियों से माला की ओर देखता हुआ चाची से बोला—"मैं तो जा रहा था, पर माला नहीं मानी। जाने ही नहीं दिया। कहने लगीं, चाय पीकर जाना।"

"चलो अच्छा हुआ, जो माला आ गई। अभी चाय तैयार होती है। ऐसी भी क्या जल्दी है ? कहाँ रहते हो भइया ?" चाची ने दुनियादारी के बाद यह प्रश्न कर दिया।

"हैलटनगर में।" जवाब के साथ राममोहन की दृष्टि ऊपर उठ गई।

"तब तो बहुत दूर है। कहाँ चटाई मोहाल और कहाँ...!"

बीच ही में राममोहन बोल पड़ा—"रिक्शे से चला जाऊँगा।"

"जल्दी कर माला ! बेचारे को अभी बहुत दूर जाना है।" कहकर चाची ने कराहकर करवट बदली, और राममोहन छत के बीच में लटकती, बिजली की उस बत्ती की ओर देखने लगा, जिसके निकट उड़ रहे दो-एक पतंगों को छत पर द्रुत गति से चल रही छिपकली खाने का उपक्रम कर रही थी।

राममोहन सोचने लगा—अब समय ग्यारह से ऊपर का हो रहा होगा। बेचई तो ठहरा बूढ़ा। उससे लाख कहा, चल तू भी मेरे साथ। लेकिन वह सीधा-सादा ग्रामीण रोशनी देखने के लालच में नहीं पड़ा। खाना लिए बैठा होगा। उसे क्या पता,

मैं किस चक्कर में फँसा रहा। सीधी-सी बात उससे यही कह दूँगा, मुझे रोशनी-वोशनी कुछ पसंद नहीं आई, इसलिये सिनेमा देखने चला गया था, क्योंकि घर पहुँचना तो कहीं बारह बजे के बाद ही होगा......।

"लीजिए।" सहसा राममोहन की विचार-शृंखला टूट गई। उसने देखा, सामने माला चाय का गिलास लिए खड़ी है। राममोहन ने उसकी ओर देखा, वह मुस्करा दी। राममोहन के भी होठों पर मुस्कान की एक क्षीण रेखा दौड़ गई। गिलास हाथ में लेकर बोला—"चाची को भी दीजिए!"

माला के उत्तर देने के पूर्व ही चाची करवट बदलकर काँखती हुई बोलीं—"तुम पियो। मैं फिर पीती रहूँगी।"

"नहीं, यह नहीं चलेगा।" कहकर राममोहन ने गिलास फ़र्श पर रख दिया।

चाची उसका आग्रह टाल न सकीं। वह माला की ओर देखकर बोलीं—"ले आ, माला! यह तो बड़े संकोची मालूम होते हैं।"

माला चाय लेने चली गई, और चाची राममोहन से पूछने लगीं—"तुम्हारा नाम क्या है भइया?"

"राममोहन।" माला ने भी राममोहन के इस स्वर को सुना। उसने एक गिलास चाची के सामने रख दिया, और दूसरा फ़र्श पर रखकर चाची को उठाकर बैठाने का प्रयास करने लगी। राममोहन ने भी सहारा दिया चाची बैठ गईं, और सब की चाय चलने लगी।

× × ×

राममोहन चला गया। चाची उसके विषय में सोचने लगीं कि सारा संसार चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि घोर कलियुग है इस समय। लेकिन फिर भी अभी कुछ थोड़ा-सा धर्म शेष है

पृथ्वी पर। नहीं तो एक क्षण में ही यह धरती रसातल को चली जाय! राममोहन कितना होनहार लड़का है! धन्य हैं उसके मा-बाप, जिन्होंने ऐसा पुत्र-रत्न उत्पन्न किया। कितना सरल और विनयी है। काश! माला के लिये मुझे ऐसा ही वर उपलब्ध हो सकता।

और माला विचार रही थी—यह कौन-सी आकर्षण-शक्ति है, जो अनायास ही मुझे राममोहन की ओर खींचे लिए जा रही है। आज मुझे क्या हो गया है कि लाख प्रयत्न करने पर भी मैं उसे भूल नहीं पाती? जीवन में यह पहला अवसर है, जब मैं अपने में मानसिक दुर्बलता पा रही हूँ। कौन-सी अज्ञात वस्तु मेरे अंतर में प्रेरणा बनकर बस गई है? यह स्वाभाविक आकर्षण एक अपरिचित के प्रति क्यों है? कारण कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। कहीं इसी का नाम तो प्रेम नहीं है, जिसे अब तक मैं उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखती चली आई हूँ? राममोहन एक झलक बनकर आया, और चला गया। फिर उसकी स्मृति बार-बार हृदय को क्यों कचोट रही है? क्या करूँ? किसी भी भाँति तो मन को शांति नहीं मिल पा रही है।

इस भाँति माला अपने मन में हैरान थी, और राममोहन सारी परिस्थितियाँ भूलकर केवल माला के बारे में ही अपने मन से तर्क कर रहा था—वही उस समय उसके मनन की वस्तु हो रही थी। राममोहन सारल्य की साक्षात् मूर्ति था, और था विवेक के साथ-साथ चलनेवाला प्राणी। वह अति शीघ्र मनुष्य का मुख देखकर उसके मन के भाव पढ़ लेता, और यदि कहीं उससे किंचित भी बात-चीत का अवसर मिल जाय, तो अंतर तक टटोल लेता। तनिक देर के संपर्क से ही उसने जान लिया, माला कैसी लड़की है! आज की नई रोशनी माला को

अपने प्रकाश में नहीं ला पाई है। उसके मुख पर भोलापन है, और है आँखों में लाज का पानी। यह जानकर राममोहन का मन अतीव आनंद से पुलक उठा। उसे ऐसा लगने लगा, मानो माला देवी-स्वरूप है। ये ही बातें लेकर उसके मन में जिज्ञासा जगी कि माला ने शिक्षा कहाँ तक पाई है, अभी पढ़ रही है, अथवा यह कार्य स्थगित हो चुका है ? घर में क्या केवल ये ही दोनों चाची और भतीजी हैं, या इनके अतिरिक्त अन्य लोग भी ?

राममोहन सोचने लगा—मैं जा तो सकता हूँ माला के घर; सीधा-सा मार्ग है, जाकर पूछ सकता हूँ, चाची का क्या हाल है ? कह सकता हूँ, उन्हें देखने चला आया। मैं कल प्रातः अवश्य जाऊँगा। पता नहीं, मुझे क्या हो गया है कि मन बरबस ही उस ओर खिंचा चला जा रहा है ? दाहिनी आँख भी फड़क रही है। समझ में नहीं आता, यह किस बात की द्योतक है। यह दैवी वरदान ही मालूम होता है, और ऐसा भी लग रहा है, यह पुरातन उक्ति चरितार्थ हो रही है—मार्ग में अचानक किसी अपरिचित से भेंट हो जाय, और उसकी स्मृति निरंतर आती ही रहे, तो यह भावी के लिये शुभसूचक है। जाना नहीं जाता, किस समय कौन किस रूप में मिल जाय !

इसी प्रकार सोचते-सोचते राममोहन को पता नहीं किस समय नींद आ गई, और सबेरे जब आँख खुली, तो देखा, कमरे में धूप फैली हुई है।

२

स्वत्व पाकर जिस प्रकार मनुष्य अपनी वास्तविकता भूल जाता है, ठीक उसी भाँति वित्त का अधिकारी भी अपना विवेक खो बैठता है। हरिगाँव के भूतपूर्व जमींदार कृष्णमोहन, जो अतुल वैभव के स्वामी थे, दिन-रात धन के नशे में मदांध रहते—चूर रहते। महाजनी मंद पड़ गई, और जमींदारी चली गई, किंतु उनका रोब अब भी निर्धनों और असमर्थों पर वैसा ही था। रस्सी जल गई, पर ऐंठन न छूटी। अस्तित्व लुप्त हो गया, लेकिन वे फिर भी अपने को एक सम्राट् से कम न समझते थे। पुत्र राममोहन को एम्० ए० तक पढ़ाया था, और चाहते थे, वह गाँव में आकर लेन-देनवाला काम करे। ब्याज पर रुपए देना उन्होंने बंद कर दिया था। अब तो उन्होंने एक नई प्रणाली अपना ली थी। वह जब सौ रुपए की चीज गिरवीं रख लेते, चाहे वह सोने की हो या चाँदी की, तब पचास रुपए देते थे। उस पर भी साथ में यह प्रतिबंध था कि यदि छ महीने तक बंधक रक्खा जेवर न छुड़ाया गया, तो वह डूब जायगा। डूब जाने के अर्थ हुए कि कृष्णमोहन के कोष में इकट्ठा हो जायगा। बेचारे, विवश ग्रामीण अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने और कहाँ जाते! इकन्नी रुपए का सूद देकर ऋण काढ़ते, और इस भाँति चंद दिनों में ही अपने घर की रही-सही पूँजी भी गँवा बैठते।

कृष्णमोहन की अवस्था पैंतालीस पार कर गई थी, किंतु

कहीं भी अभी उनका बदन थका नहीं प्रतीत होता था। ऐसा लगता था, आयु पैंतीस और चालीस के बीच में है। लंबा पाँच हाथ का, खूब भरा, हृष्ट-पुष्ट शरीर, दमकता हुआ चेहरा और उस पर रौबदार, नुकीली मूछें उनके असाधारण व्यक्तित्व की साक्षात् प्रतीक थीं। एक-आध बाल सिर का तो अवश्य श्वेत हो गया था, मगर मूछें बिल्कुल श्याम-वर्ण थीं। सिर पर अंडी की पगड़ी वह बारहों महीने बाँधते। गर्मी और बरसात में सिल्क, तनजेब तथा अंडी के कुरते और जाड़े में ऊनी कुरते का प्रयोग करते। वह कुरते पर सदरी अवश्य पहनते। पैरों में बूट, फ़ीतेदार जूते और कभी-कभी खुले मुँह के भी पहने देख पड़ते थे। धोती बुर्राक़-जैसी सफ़ेद और बहुत ही महीन उन्हें प्रिय थी। बाईं कलाई में घड़ी और दाहिने हाथ की उँगलियों में दो अँगूठियाँ सदैव पहने रहते।

कृष्णमोहन बहुत ही खुशामद-पसंद व्यक्ति थे। धन की लिप्सा तो उन्हें इतनी अधिक थी कि दिन-रात यही सोचते रहते, कैसे और अधिक पैसा प्राप्त कर लूँ। परिवार में पत्नी देवकी, एकलौता राममोहन और एक ग्यारह-वर्षीया पुत्री रूपा के अतिरिक्त और कोई न था। फिर भी वह पैसे के लिये प्राण देते थे। चार हल की खेती होती थी उनके यहाँ। अनेक नौकर थे, और थे बहुत-से पशु भी, जिनमें गायों और भैंसों का ही आधिक्य था। घर में घी और दूध की नदियाँ बहती थीं।

इस भाँति कृष्णमोहन सब प्रकार संपन्न थे। उन्हें किसी तरह का अभाव न था। तभी वह अपने को एक ताल्लुक़ेदार से कम न समझते थे।

रात्रि का पहला प्रहर ही अभी पूर्ण यौवन पर था। कृष्ण-मोहन भोजन करके बिस्तर पर जा लेटे। मिट्टी के तेल का

बड़ा-सा लैंप कमरे के मध्य एक कड़े में टँगा जल रहा था। अँगनू ने पान के बीड़े, डली और तंबाकू तश्तरी में लाकर मालिक के सामने रख दी, फिर पैताने बैठकर पैर दाबने लगा। कृष्णमोहन पान का बीड़ा मुँह में दाब धीरे-धीरे कुचरते हुए उससे बोले—"अरे अँगनुआ, जा तनिक अपनी मालकिन को तो बुला ला।"

अँगनू उठकर चल दिया। वह मन-ही-मन सोचने लगा—आज जरूर कोई खास बात है, तभी मालकिन का बुलाया हुआ है। नहीं तो, ऐसी क्या जल्दी थी? तनिक देर में दूध का गिलास लेकर आतीं ही; रोज का नियम है यह।

दो मिनट बाद ही देवकी पति के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई, और धीरे से पूछा—"क्या है? क्यों बुलाया है मुझे?"

कृष्णमोहन पत्नी को कुछ उत्तर दें कि तब तक अँगनू फिर आकर उनके पैर दबाने लगा। उन्हें वह भार-स्वरूप जान पड़ा, और तत्क्षण ही मन पुरातन उक्ति की ओर दौड़ गया कि नौकरों के सामने कोई भेद की बात नहीं करनी चाहिए। इससे अक्सर बनते काम बिगड़ते देखे गए हैं। वह अपना पैर ऊपर खींचते हुए उससे जल्दी से बोले—"जा, जा! अब रहने दे। तू जाकर और काम देख। जब सोने जाना, तो मुझे दूध दे देना लाकर।"

अँगनू चुपचाप उठकर चला गया, और दंपति में परस्पर वार्तालाप चलने लगा।

देवकी सामने पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठती हुई, सरल स्वर में बोली—"हाँ, क्या कह रहे थे तुम?"

"आज परसोला के जमींदार देवदत्त आए थे। राममोहन की कुंडली उनकी लड़की से मिल गई है। बनाबत तो बन गया,

साथ में चालीस तोला सोना ! यह कहाँ का कम था, फिर भला कृष्णमोहन क्यों न फूले समाते !

वर-इच्छावाला संस्कार तो इस तरह पूर्ण कर लिया कि घर में राममोहन की बचपन की टोपी रक्खी थी, उसी पर देवदत्त ने पान और सुपारी के साथ सात गिन्नियाँ रख दीं ।

अब कृष्णमोहन के सम्मुख प्रश्न था राममोहन को कानपुर से बुलाने का । तिलक चढ़ने के केवल तीन ही दिन रह गए थे ।

चिट्ठी का कौन ठीक, समय पर मिली या न मिली । तार देने के लिये दस मील दूर कस्बे तक आदमी जाय, इसकी अपेक्षा यह अधिक अच्छा रहेगा कि मनसुखा को कल सबेरे ही कानपुर भेज दिया जाय । वह अपने साथ ही राममोहन को लिवा लाएगा । यह सोचकर कृष्णमोहन ने मनसुखा को, प्रातः होते ही, भेज दिया ।

मनसुखा के जाने के बाद कृष्णमोहन सोचने लगे—भाग्य-वाले ही दूध, पूत और धन पाते हैं । कितना दयालु है भगवान् मुझ पर ! कल बहू घर में आ जायगी, और ईश्वर चाहेगा, तो साल-डेढ़ साल में नन्हा-मुन्ना भी उसकी गोद में खेलने लगेगा । देवकी बिल्कुल मूर्ख है । कहती है, राममोहन देहात की लड़की पसंद नहीं करेगा । अरे, वह छोकरा जायगा कहाँ ? जहाँ स्त्री का मुँह देखा, वहीं माया और मोहजाल में फँस जायगा । यह तो दुनिया का दस्तूर है, ब्याह होने से पहले लड़के दुनिया-भर की बातें बका करते हैं, लेकिन पत्नी के घर में आते ही अपना अतीत भूल जाते हैं । भला कभी परंपरा बदली है ? राममोहन भी गृहस्थी में आते ही पूरा दुनियादार बन जायगा ।

३

प्रभात-समीर अपने आँचल में गुलाबी जाड़ा लिए धीरे-धीरे डोलने लगा। माला चाची के बदन पर सेंक करते-करते थककर चारपाई की पाटी पर सिर रख बैठे-ही-बैठे सो गई थी, और चाची की आँखें लग गई थीं, उससे पहले ही। कब मुर्गों की बाँग हुई, और कब सुबह की अजान सुनाई पड़ी मस्जिद में, दोनों चाची-भतीजी को इसका बिल्कुल बोध नहीं था। दोनों ही गहरी निद्रा में लीन थीं। दीवालों पर से धूप उतरकर आँगन में आ गई, और फिर इठलाती हुई, इंद्रधनुषी रवि-रश्मियाँ माला के जानु पर जा लोटने लगीं। उसकी काली बुक की, सुनहली पन्नी लगी हुई साड़ी झिलमिला उठी। ऐसा लगता था, इसमें सल्मे-सितारे जड़े हुए हैं। आँगन में फुदकती हुई गौरैयाँ कमरे में आ चीं-चीं करने लगीं; किंतु फिर भी किसी की नींद न टूटी। सहसा बाहर की कुंडी खटकी, और साथ ही किवाड़ों पर थपथपाहट हुई।

"ऐं! इतना दिन चढ़ आया!" माला यह कहती हुई अँगड़ाई लेकर जाग पड़ी। वह कान उटेरकर बाहर की आहट लेने लगी।

इसी बीच चाची की भी नींद टूटी। वह माला की ओर देखकर, व्यस्त स्वर में बोलीं—"अरी माला! तू अब तक सो रही है? देख तो, बाहर कौन बुला रहा है!"

माला जल्दी से उठी, और "कौन है?" कहती हुई किवाड़

खोलने चल दी । किवाड़ खुलते ही उसके मुँह से निकल पड़ा—"आप ! नमस्ते ।" और वह चौंककर आगंतुक की ओर देखने लगी ।

"नमस्ते ।" दोनों हाथ बाँधकर आगंतुक ने मुस्कराकर कहा, और फिर आत्मीयता से सराबोर वाणी में बोला—"चाची-जी की तबियत अब कैसी है ?" यह कहने के साथ ही उसके पाँव अंदर बढ़ आए ।

"अभी-अभी सोकर उठी हैं । रात को बड़ी देर तक मैं सेंक करती रही थी ।" कहती हुई माला आगे-आगे चलने लगी ।

राममोहन माला के पीछे-पीछे चल रहा था । उसे देखते ही चाची उठकर बैठ गईं, और आश्चर्यचकित होकर बोलीं—"अरे ! तुम आ गए !"

अब राममोहन भी पूर्णतया अपनत्व से भर आया था । वह 'मा जी' न कहकर, धीरे से संकोच-भरे स्वर में बोला—"आपका क्या हाल है चाची, यही देखने चला आया ।"

"पगला कहीं का ! मैं कोई बीमार हूँ क्या, जो सुबह-सुबह हैलटनगर से इतनी दूर चला आया ? सब दर्द सेंक से दूर हो गया था ।"

चाची की यह मधुर भर्त्सना राममोहन को बहुत प्रिय लगी । वह उनके पैंताने चारपाई पर बैठ गया, और टुकुर-टुकुर आँगन की ओर निहारने लगा ।

चाची और राममोहन में वार्तालाप चलते देख माला शौचादि नित्य-कर्मों से निवृत्त होने चली गई थी । उसका प्रत्येक कार्य इतने वेग से हो रहा था, मानो उसके हाथ और पैर मशीन हो गए हों ।

माला का पाला तोता पिंजड़े में चक्कर काट रहा था,

और टें-टें करके जता रहा था, मैं भूखा हूँ। राममोहन की दृष्टि आँगन के फ़र्श से उठकर, बाँस की अरगनी में लटक रहे लोहे के पिंजड़े पर जा टिकी। तभी चाची ने उससे पूछ दिया—"किस दरजे में पढ़ते हो भइया ?"

राममोहन सहसा कुछ सजग-सा हो गया, और तत्क्षण ही बोल उठा—"एम्० ए० में।"

"तब तो बहुत अच्छा है। युग-युग जियो लाल! ईश्वर तुम्हें ख़ूब तरक़्क़ी दे।" यह कहकर उन्होंने आँगन की ओर देखा, और उच्च स्वर में पुकार उठीं—"माला! ओ माला! अरे कहाँ चली गई तू? सुआ टाँय-टाँय लगाए है। इसे थोड़ा-सा आटा सानकर दे दे, और राममोहन के लिये चाय तो बना ला, जल्दी से।"

"आई चाची!" कहती हुई माला जल्दी-जल्दी अपने बालों में कंघी करने लगी।

"मैं अभी-अभी चाय पीकर आ रहा हूँ। आप......।"

"मेरे सामने तुम्हारा संकोच रत्ती-भर भी नहीं चल पाएगा।" चाची ने उसे आगे बोलने ही नहीं दिया।

राममोहन उनके अतीव स्नेह के सम्मुख कुछ न बोल सका। वह दृष्टि नीची कर बैठा कनखियों से सामने आती हुई माला को देखने लगा। वह श्वेत मलमल की धोती पहने थी, और कत्थई पापलेन का ब्लाउज़। गोलमटोल चेहरा, घुली चाँदनी-सा रंग, ठुड्डी पर बाईं ओर एक तिल, डेल-जैसी बड़ी-बड़ी आँखें! ऐसा लगता था, साक्षात् इंद्र की अप्सरा है। माला की उम्र यद्यपि सोलह वर्ष से अधिक न थी, लेकिन वह युवती ही नहीं, प्रत्युत एक स्त्री प्रतीत होती थी।

"चाय तो मैंने नहाने के पहले ही चढ़ा दी थी चाची! अभी लाती हूँ।" कहकर माला वापस लौटने लगी।

तब राममोहन ने देखा, उसकी गति में कितनी मादकता है, लचक है, और है सलोनापन। वह मन-ही-मन उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो उठा, और सोचने लगा—रूप में कितना आकर्षण होता है, जो अनायास ही प्रत्येक को अपनी ओर बिना आकर्षित किए नहीं रहता! माला की छवि ऐसी है कि भुलाई नहीं जा सकती। काश! मैं निरंतर इसी रूप-माधुरी का पान करता रहूँ! माला......।

"शहर में ही घर है भइया?" सहसा चाची ने उसका ध्यान भंग कर दिया।

तत्क्षण ही राममोहन सजग हो, धीरे-से बोला—"नहीं, मैं तो गाँव में रहता हूँ।"

इसके बाद बातों का सिलसिला अच्छी तरह जम गया। जब तक माला चाय लेकर न आई, तब तक इस थोड़े-से समय में ही चाची ने राममोहन का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया, और राममोहन ने उनका।

चाय पी चुकने के बाद चाची शौच से निवृत्त होने चली गईं। राममोहन उठकर जाने के लिये उद्यत हो माला से बोला—"अच्छा, अब मैं भी चल रहा हूँ।" यह कहकर उसने दोनों हाथ बाँधकर, शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए, तनिक मुस्कराकर कहा—"नमस्ते।"

"बैठिए साहब! ऐसी भी क्या जल्दी है?" माला के स्वर में आग्रह था।

लेकिन राममोहन रुका नहीं। वह जाने का आयोजन करके पुनः बोला—"कॉलेज भी तो जाना है!"

"चाची को तो आ जाने दीजिए।" माला के शब्द हठ से ओतप्रोत थे।

"तब तो, फिर और भी देर लग जायगी।" कहने के साथ राममोहन के क़दम आगे बढ़ गए।

"सुनिए भी।" जल्दी से माला उठकर खड़ी हो गई।

"क्या ?" राममोहन चौंककर उसकी ओर देखने लगा।

परस्पर उभय पक्षों की दृष्टि एक दूसरे से टकरा गई। माला कुछ झेंप-सी गई। उससे उत्तर में एक भी शब्द नहीं निकल सका। राममोहन ने भी दुबारा अपना प्रश्न नहीं दोहराया। वह धीरे-धीरे चाची की चारपाई के पास पड़ी कुर्सी पर जाकर बैठ गया। और, माला ? वह धीरे-धीरे पदक्षेप के साथ उसी के निकट, फ़र्श पर बिछे बोरे पर आसीन हो गई। कुछ क्षण दोनों का मौन व्यापार चलता रहा। धीरे से राममोहन ने नीरवता भंग की। वह मृदु स्वर में बोला—"आप पढ़ने नहीं जातीं क्या ?"

"आज डेढ़ साल से घर पर बैठी हूँ। सोचा था, कम-से-कम बी० ए० तो अवश्य करूँगी। लेकिन मनुष्य का सोचा हुआ होता कब है ? आर्थिक समस्याओं ने मुझे आगे पढ़ने से रोक दिया। मेरी शिक्षा मैट्रिक तक ही सीमित रह गई।" बात समाप्त होने के साथ ही माला के मुँह से एक दीर्घ उच्छ्वास निकल पड़ा।

राममोहन का हृदय करुणा से भर गया, और माला के प्रति, पता नहीं, उसे कितनी सहानुभूति हो आई ! वह शांत स्वर में उसके मुख पर दृष्टि टिकाकर बोला—"प्राइवेट भी तो इंटरमीडिएट कर सकती हो। मैं पढ़ा दिया करूँगा। परसाल परीक्षा में बैठ सकती हो। इसी ऑक्टोबर में फ़ार्म भरवा दूँगा।"

माला कुछ सोचने लगी। फिर उसने सिर नीचे झुका लिया।

"क्या सोचने लगीं ?" राममोहन ने उसे टोका।

"बहुत मुश्किल है। कैसे चल पाएगा यह सब ?" पुनः एक लंबी निःश्वास माला ने छोड़ी।

"आप बड़ी संकोचशील जान पड़ती हैं !" तनिक मुस्कराकर राममोहन ने कहा, और फिर उसके आनन पर दृष्टि स्थापित कर दी।

माला कुछ शरमा गई। बोली—"नहीं तो, आपने मुझे ऐसा कैसे समझ लिया ?"

"यह बताना तनिक मेरे लिये भी कठिन है।" अब राम-मोहन को हँसी आ गई। माला के भी अधर खिल उठे। वह धीरे से बोली—"जाइए, आप तो हँसी करने लगे।"

"कौन, मैं ?" राममोहन यह कहकर उधर देखने लगा।

"नहीं तो क्या मैं ?" कहकर माला भी हँस पड़ी।

दोनों की हसी चल रही थी कि सहसा चाची के आगमन ने उसमें व्याघात डाल दिया। जहाँ पर माला और राममोहन बैठे थे, वहीं चाची भी उनके मध्य आकर बैठ गईं। पुरवाई का एक शीतल झोंका धीरे-से कमरे में प्रविष्ट हुआ, और सबको शरद का संदेश सुना, आनंदित करके चला गया।

जीवन में जब कभी ऐसी नवीन वस्तु का समावेश हो जाता है, जो हृदय को पूर्ण तृप्ति और मन को संतोष से भर देती है, तो व्यक्ति उल्लास से आलोड़ित हो मग्न हो उठता है। उसका अतीत चाहे जैसा भी कटु से कटु व्यतीत हुआ हो, और उसे चाहे लाख प्रतारणाएँ मिली हों इस अवधि तक, वह सभी कुछ भूल वर्तमान के गुण गाने लगता है। भविष्य की बात तो ऐसी स्थिति में आ वह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचता। राममोहन के हृदय का तार-तार बज रहा था, और उससे ऐसे संगीत की सृष्टि हो रही थी, जो उसके लिये एकदम नूतन, अनुपम और अलौकिक था। स्वर्गीय सुख की कल्पना में विभोर वह घर पहुँच गया, और उसे पता ही नहीं लगा, वह पैदल आया है या किसी वाहन पर। पैदल इसलिये चला था कि आगे चलकर कोई सवारी कर लेगा; किंतु अपनी धुन में मस्त होने के कारण उसे कुछ ध्यान ही नहीं रहा, बल्कि कुछ मन को आघात पहुँचा कि मार्ग इतनी जल्दी कैसे तय हो गया! वह माला के नाम की माला जपता चला आ रहा था। उसे क्या पता, फूल के साथ काँटों का भी अटूट संबंध है। चौखट पार करते ही उसकी दृष्टि मनसुखा पर पड़ी, जो आगे बढ़, उसके चरण-स्पर्श कर, कह रहा था.........“पालागन बबुआ!”

अपनी धुन में राममोहन मनसुखा को पालागन का जवाब

भी देना भूल गया। यकायक उसके मुँह से निकल पड़ा—"कहो, कैसे आए मनसुखा ?"

मनसुखा के बोलने के पहले ही बेचई बोल उठा—"मालिक बोलाओ हँइनि।"

"क्यों ?" राममोहन के ललाट पर सलवटें पड़ गईं। वह कुछ चिंतित हो गया।

"परसौं तुम्हारो फलदान चढ़िहइ बबुआ !" मनसुखा ने प्रसन्न-मन, अपनी सहज, ग्रामीण भाषा में, उत्तर दिया।

राममोहन चौंक उठा। उसे ऐसा लगा, मानो किसी ने छत से उठा कर नीचे फेंक दिया हो। वह कुछ सोचता हुआ खिन्न होकर बोला—"क्या मतलब ?"

"मतलब हम का बतई बबुआ ! आजुइ हमारे साथ चलउ !" मनसुखा ने अपनी बात कह दी।

लेकिन राममोहन ने उसका कुछ जवाब नहीं दिया। वह जल्दी से दूसरे कमरे में भाग गया, और पलंग पर पड़, तकिए पर सिर गड़ा, कुछ सोचने लगा। विचारने लगा—पुस्तकों की बातों पर मैंने कभी पूर्ण विश्वास नहीं किया; लेकिन आज ज्ञात हो रहा है, पुरातन उक्तियाँ और नीति युग-युग तक ही क्या, बल्कि सदा-सर्वदा मानव का पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी। मैंने आज जाना, जो कार्य व्यक्ति जान-बूझकर करता है, वह क्रिया होती है, और जो कार्य अनायास ही संपादित हो जाता है, उसे घटना कहकर कारा जाता है। परसों मेरा तिलक चढ़ेगा। मेरे पिता मुझे सामाजिक रूढ़ियों में बाँधने के लिये कितने उत्सुक और प्रफुल्लित बैठे होंगे ! लेकिन यह सब नहीं चलेगा, बिलकुल नहीं चलेगा। मैं अपनी स्वच्छंदता में बाधा नहीं पड़ने दूँगा। क्या यही सृष्टि का नियम है कि आविर्भाव के साथ निर्वाण आवश्यक है ? माला कितनी भोली है, कितनी

सरल और कितनी साधारण ! क्या मेरी भावी जीवन-संगिनी भी ऐसी ही होगी ? कदापि नहीं। माला बिल्कुल सत्य कह रही थी, मनुष्य का सोचा होता कब है ! कुछ भी हो, मुझे अभी किसी भी शर्त पर ब्याह करना ही नहीं है। गृहस्थी का चक्कर मनुष्य को तेली के बैल की नाईं एक ही परिधि में सदैव घुमाता रहता है। मैं ऐसी भूल जान-बूझकर नहीं करूँगा। वह व्यक्ति क्या और उसका अस्तित्व ही क्या इस संसार में, जिससे मानव-जाति का कल्याण न हो सका, और जो कोई नव-निर्माण न कर सका ! समय-समय के सब काम अच्छे लगते हैं। असमय की शहनाई भला आज तक किसी को पसंद भी आई है ? मैं डी० लिट्० होने के सपने देख रहा हूँ, और पिताजी को ब्याह की सूझी है। मैं............।

"खाना खाइ लेऊ बबुआ, कालिज का देर हुइ रहइ हइ।" बेचई ने आकर उसकी विचार-शृंखला तोड़ दी।

राममोहन उठकर बैठ गया, और क्रुद्ध स्वर में बोला—"मुझे कॉलेज नहीं जाना है।"

"आँय !"

अभी बेचारा इतना ही कह पाया था कि फिर गरमा उठा—"आँय-आँय क्या कहते हो ? जाओ, अपना काम देखो ! कह तो दिया, आज मुझे कॉलेज नहीं जाना है।"

"तऊ खाना तउ खाइ लेउ।" बेचई ने डरते-डरते कहा।

"अभी भूख नहीं है। जब लगेगी, खा लूँगा।" कहकर राममोहन फिर पूर्ववत् पड़ रहा।

बेचई को आगे बोलने का साहस नहीं हुआ। वह चुपचाप कमरे के बाहर निकल आया।

राममोहन अब पड़ा न रह सका। वह उठकर कमरे में टहलने लगा, और जब इस पर भी शांति न मिली, तो धीरे-धीरे घर से बाहर निकल गया। बेचई और मनसुखा उसकी गतिविधि देखते रहे। उनका होंठ पर से होंठ नहीं उठा।

राममोहन के पाँव कंपनी-बाग की एक लौह-निर्मित बेंच के पास आकर रुके। धूप हरी-हरी दूब पर बिछ रही थी, और मंद-मंद हवा शनैः-शनैः बहकर द्रुमों के पल्लवों में कंपन भरने में व्यस्त थी। गुलाबी जाड़ा था, अतः धूप की गर्मी उसे न भाई। वह बरगद की छाया में पड़ी दूसरी बेंच की ओर चला गया। सामने कुछ लड़के दौड़-दौड़कर फ़ुटबाल खेल रहे थे, और कुछ व्यक्ति बैठे परस्पर आमोद-प्रमोद और वार्ता में जुटे थे। यहाँ बरगद के नीचे बिलकुल एकांत था। राममोहन ने जेब से रूमाल निकाला, और बेंच साफ़ करके उस पर बैठ गया। बैठे-बैठे कुछ आलस लगा, तो उकताकर लेट गया।

राममोहन सोच रहा था—अखिल विश्व में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिले, जिसे जीवन में अपना मनचाहा फल मिला हो अथवा वे कार्य करने को मिले हों, जिनकी ओर आदि से लेकर अंत तक उसकी रुचि रही हो। क्या सम्राट और क्या राह का भिखारी, सभी विश्व की परंपरा की डोर में लिपटे हैं। यह कर्म-क्षेत्र है। यहाँ पर किसी भी कार्य या फल की इच्छा रखना ही गुनाह है। जीवट के पुतले ही इस माया-रूपी संसार से पार पा सकते हैं।

फिर दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा—ऐसी क्या जल्दी है ब्याह की? अभी मैं अपने मार्ग में पिताजी को यह रोड़ा नहीं अटकाने दूँगा। जिस नारी को न मैंने पहले कभी देखा, और न जिसके विषय में कुछ जानता ही हूँ, उससे ऐसी अनभिज्ञावस्था में

पाणि-ग्रहण कर लूँ, यह कैसे सम्भव है? काया का काया से संबंध ही ब्याह की परिभाषा नहीं है। एक दूसरे की रुचि, विचार और मन का मेल ही यथार्थ में ब्याह है; वही सार्थक है। इस प्रकार सोचते-सोचते राममोहन हैरान हो उठा, उसे शांति लेश-मात्र भी न मिली।

५

उस रात राममोहन लगभग बारह बजे घर पहुँचा। मनसुखा तो सो गया था, लेकिन बेचई टकटकी लगाए दरवाजे की ओर देख रहा था। राममोहन को देखते ही वह जान सी पाकर बोल उठा—"आइ गएउ बबुआ! आजु सबेरेउ कुछू नाईं खाओ। चलउ खाना खाइ लेउ।"

"मुझे भूख नहीं है। अभी खाकर आ रहा हूँ।" राममोहन की इस बात के सामने बेचई कुछ न बोल सका। उसकी बूढ़ी आँखें स्पष्ट देख रही थीं, राममोहन की आँखें चढ़ी हुई हैं, और टेढ़ी भौंहें इस बात का प्रत्यक्ष प्रतीक हैं कि उसने आज दिन-भर कुछ भी नहीं खाया है, और इस समय बेहद गुस्से में है। फिर भी साहस करके वह आगे बढ़ा, और दीन स्वर में बोला—"बबुआ, तुम्हें कसम भगवान की हइ, चलउ थोरो खाइ लेउ।"

"एक बार कह दिया, भूख नहीं है, लेकिन तुम पीछे ही पड़े हो। मैं पूछता हूँ, आखिर तुम चाहते क्या हो?" राममोहन आक्रोश से भर उठा था।

"हम कुछू नहीं चाहति हनु बबुआ!" बेचई थर-थर काँपने लग गया था। उसे ऐसा लग रहा था, जगत में उथल-पुथल मच रही है, और सारा संसार बावला हो, समय की प्रत्यंचा पर चढ़ विनाश का आवाहन कर रहा है।

उसे चुपचाप खड़ा देखकर राममोहन का क्रोध उबल

पड़ा। वह गरजकर बोला—"तो खड़े क्यों हो? जाओ, अपना काम देखो।"

बेचई उसके सामने से चला गया, और राममोहन विचार-सागर में गोते खाने लगा। वह सोचने लगा—वास्तव में, जैसा अन्य देशवाले कहते हैं, भारतवर्ष संसार के सभ्य देशों से सभ्यता में दस वर्ष पीछे है, यह अक्षरशः सत्य है। कितने खेद की बात है, जो देश कभी सोने की चिड़िया था, साथ ही सभ्यता और संस्कृति का केंद्र भी, आज उसी की पुरातन संस्कृति सोई पड़ी है, और वह जग में टीका-टिप्पणी का स्थान ग्रहण कर रहा है। बेचई और मनसुखा तो सीधे-सादे ग्रामीण हैं। उन्हें यदि दोषी कहा जाय, तो सर्वथा भूल है। पिताजी तो पढ़े-लिखे समझदार हैं, फिर आखिर, पता नहीं, उन्हें यह ब्याहवाला भूत कैसे सवार हो गया? अभी मेरी अवस्था *ही क्या है, बाईस वर्ष भी तो पूरे नहीं हुए। ब्याह कोई गुड़िया* और गुड्डे का तो खेल है नहीं, और वह इसे खिलवाड़ समझे बैठे हैं! जब इस देश के शिक्षित, समर्थ और सभ्रांत व्यक्ति अंध-विश्वास की लकीर पर दौड़ रहे हैं, तो गाँवों की अपढ़ जनता के लिये क्या कहा जाय?

रात-भर राममोहन इसी प्रकार के विचारों में उलझा रहा। उसे एक क्षण के लिये भी नींद न आई। प्रभात होते ही वह माला के घर पहुँच गया। वहाँ जाकर उसे कुछ शांति मिली। वह घंटों भटका रहा, और जब घर वापस आया, तो सामने मनसुखा को देखते ही वह बोल उठा—"तुम अभी वापस जाओ मनसुखा! पिताजी से कह देना, मुझे अभी ब्याह नहीं करना है।"

"का कहति हउ बबुआ?" मनसुखा उसके मुँह की ओर देखकर रह गया।

"तुमसे जो कहा, वह तुमने सुना या नहीं ?" राममोहन के नेत्र-द्वय रक्त-वर्ण हो गए।

मनसुखा सहम गया। वह दबी ज़बान से बोला—"सुनि लियो बबुआ !"

"तो बस फिर यही जाकर कह देना।"

राममोहन की यह बात बेचई ने भी सुनी, किंतु उसकी हिम्मत न हुई कि एक शब्द भी बोलता। वह चित्रलिखा-सा खड़ा रहा, और मनसुखा धीरे-धीरे घर के बाहर हो गया।

× × ×

समुद्र में जैसे यकायक ज्वार-भाटे की सृष्टि हो जाती है, ठीक वैसे ही कृष्णमोहन मनसुखा की बातें सुनकर उबल पड़े। पहले तो वह खूब बड़बड़ाए, और जब इस पर भी उन्हें तुष्टि न हुई, तो पत्नी को लक्ष्य करके दो-चार जली-कटी सुनाईं। पर ज्वार देर तक कब ठहरता है ? वह तो जितने वेग से उठता है, उतने ही वेग से शांत हो जाता है। थोड़ी देर में कृष्णमोहन भी मौन हो गए, और विचार करने लगे, आगे उन्हें अब क्या करना चाहिए, क्योंकि कल तिलक चढ़ेगा, स्थिति पर्याप्त चिंत्य हो उठी है।

कृष्णमोहन ने बहुत सोचा, लेकिन किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। उन्हें रह-रहकर इस बात पर क्रोध आ रहा था, कल का छोकरा राममोहन, उसका यह साहस ! वह मेरी अवज्ञा कर रहा है। देखूँ, मेरे सामने वह कैसे ज़बान खोलता है ! वह लड़का है, और मैं बाप। अभी केवल छाया ही में पला है। आटे-दाल का भाव मालूम हो जाय बच्चू को यदि मैं एक महीने भी रुपया न भेजूँ ! यह नहीं चलेगा। मैं उसे लाकर ही रहूँगा। देखूँ, कैसे नहीं आता है।

और, इस तथ्य पर पहुँचते ही वह नगर की ओर चल दिए।

घर में छोटे से लेकर बड़े तक, सभी सहम रहे थे, कहीं अनर्थ न हो जाय ! राममोहन को, पता नहीं, क्या सूझी है, जो बाप की बात टाल दी ! कृष्णमोहन के क्रोध को सभी जानते थे कि उनका गुस्सा हरा है। रोष में आकर व रियायत करना तो जानते ही नहीं ।

उसी रात दोनों बाप-बेटे पास-पास बैठे, और वार्तालाप इस प्रकार आरंभ हुआ।

राममोहन बोला—"कैसे आए पिताजी ?"

"तुम्हारी नई सभ्यता ने मुझे यहाँ आने के लिये मजबूर कर दिया। आता न, तो क्या करता ?" कृष्णमोहन की आँखें लाल हो रही थीं।

राममोहन सब समझ गया, लेकिन फिर भी उसने शिष्टाचार का पूर्ण रूप से पालन करते हुए दबी जबान से कहा—"मुझसे कोई भूल हो गई है क्या ?"

"भूल तुमसे नहीं, मुझसे हुई है, जो तुम्हें अँगरेजियत का जामा पहनाया। आज की शिक्षा का क्या यही महत्त्व रह गया है कि पढ़े-लिखे लड़के अपने से बड़ों की बात न मानें ?"

कृष्णमोहन अपनी बात कह गए, किंतु राममोहन का होंठ पर से होंठ नहीं उठा। वह सिर झुकाए बैठा रहा।

"मैं पूछता हूँ, आखिर तुमने समझ क्या रक्खा है ? कल फलदान चढ़ेगा; अगर गाँव तुम न गए, तो मेरी नाक कट जायगी ! क्या कहेंगे देवदत्त, और क्या कहेंगे गाँववाले, जब फलदान हमारे दरवाजे से वापस जायगा। खूब हँसी होगी। अगर तुम यही चाहते हो कि मेरी किरकिरी हो, तो मैं चला जाऊँ ?" यह कहकर कृष्णमोहन ने पुत्र की ओर देखा। वह अब भी उसी मुद्रा में बैठा था। कृष्णमोहन को जल्दी हो रही थी ।

वह स्वर में व्यग्रता भरकर फिर बोले—"बोलते क्यों नहीं ? बोलो ! जवाब दो !"

अब राममोहन असमंजस में पड़ गया । उसने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया, और अत्यंत मंद स्वर में बोला—"मैं क्या बताऊँ, मेरी समझ ही काम नहीं दे रही है !"

"वाह री तुम्हारी समझ और तुम ! कल सबेरे ही मेरे साथ गाँव चलो । अँगरेज़ी क्या पढ़ ली, एकदम बुद्धि ही गँवा बैठे !" कृष्णमोहन ने उसका पक्ष दुर्बल देख अपने शासित स्वर में यह कह डाला ।

अब राममोहन का मुँह खुल गया था । वह नीची दृष्टि कर सहमता हुआ कह गया—"ऐसी क्या जल्दी थी अभी ब्याह की ? मैंने तो सोचा था, एम्० ए० करने के बाद रिसर्च करूँगा । डी० लिट्० हो जाने पर ही यदि यह कार्य होता, तो अधिक अच्छा था । इसीलिये मनसुखा को लौटा दिया था ।"

"लेकिन क्या तुम पर मेरा कोई भी हक नहीं है ?" कृष्ण-मोहन उसे अपने रोब में ही रखना चाहते थे ।

"यह मैं कैसे कह दूँ ?" छूटते ही राममोहन ने जवाब दिया ।

"तो फिर फ़िज़ूल की बातें न करो । मैं जो कहता हूँ, उस पर ध्यान दो ।" कृष्णमोहन ने इतना कहा, और फिर कमरे में उठकर टहलने लगे ।

राममोहन सोचने लगा—पिताजी से व्यर्थ के लिये तर्क करना उचित नहीं, क्योंकि वह अपनी धुन के पक्के हैं । ज़िद करने से भी कोई परिणाम नहीं निकलेगा । इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति से कहा भी क्या जा सकता है, जो अपने बराबर किसी को बुद्धिमान समझता ही नहीं । अच्छी उलझन आ गई है सामने । आख़िर करूँ क्या ? यदि साथ जाता हूँ, तो कल तिलक

अवश्य चढ़ेगा। यदि इंकार कर दूँ, तो बाप-बेटों के बीच भेद की दीवाल खड़ी हो जायगी। मनुष्य की दुर्बलता उसे स्वयं नहीं जान पड़ती। लेकिन पिताजी तो उन आदमियों में से हैं, जो यदि अपनी दुर्बलता समझ भी जायँ, तो भी ज़िद पर अड़े रहेंगे। मैं..................।

"क्या सोच रहे हो ?" सहसा कृष्णमोहन ने पास आ उसकी विचार-धारा तोड़ दी।

राममोहन एकदम चौंक उठा। बोला—"कुछ नहीं।"

इसके बाद कृष्णमोहन पास ही पलंग पर बैठ गए, और फिर उसके ब्याह के विषय की बातें करने लगे।

× × ×

राममोहन ने कृष्णमोहन को हर प्रकार अपनी ओर मोड़ना चाहा, किंतु काले के आगे दिया नहीं जला। विवश होकर उसे गाँव जाना ही पड़ा। चलते-चलते उसके मुँह तक कई बार आया कि साहस करके कह दे—जिस कार्य के लिये आप मुझे बाध्य कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि उसका परिणाम किसी अन्य को ही भोगना पड़ जाय। लेकिन परिस्थिति बिगड़ न जाय, इस भय से वह मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाल सका।

६

राममोहन गाँव से लौट आया। वह खिन्न-मन जब माला के घर पहुँचा, तो वह उसे देखते ही सूख गई। चाची उस समय घर में नहीं थीं—पड़ोस में किसी के यहाँ गौने का व्यवहार चुकाने गई थीं। राममोहन अस्त-व्यस्त-सा कुरसी पर जाकर बैठ गया। माला पास आ, उसके आनन पर दृष्टि टिका कौतूहल के स्वर में पूछने लगी—"दो दिन आप कहाँ रहे? मैं आपकी राह देखती रही। चाची भी रोज़ आपके विषय में चर्चा किया करती हैं। क्या बात है? आज आप उदास क्यों हैं?"

"कुछ न पूछो माला! मैं तो मौत चाहता हूँ, लेकिन माँगने से भी तो वह नहीं मिलती।" यह कहकर राममोहन ने एक लंबी साँस ली। लेकिन तत्क्षण ही वह कुछ सजग हो गया, और माला से बोला—"चाची कहा हैं?"

"पड़ोस में गउने का व्यवहार चुकाने गई हैं।" माला हँसते-हँसते यह कह गई, और फिर तनिक चुप रहकर पुनः बोली—"आपका चेहरा उतरा हुआ है। क्या बात है? आप बताते क्यों नहीं?"

"क्या बताऊँ माला! मैं तो एक ऐसे मार्ग से गुज़र रहा हूँ, जो अनिश्चित है, और अनजाना है। सोचा था, यहाँ आकर कुछ शांति मिलेगी, लेकिन उसके चिह्न तक दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं।" राममोहन ने ऊबकर यह बात कही, और फिर पलकें बंद कर लीं।

"आपने तो मुझे उलझन में डाल दिया है। मैं पूछती हूँ, आखिर बात क्या हो गई ? कुछ बताइए भी तो।" माला की वाणी अपनत्व और सहानुभूति से भर आई थी।

राममोहन ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई, और फिर एक लंबी साँस लेकर माला का मुख निहारने लगा। वह धीरे से बोला—"मेरा सौदा हो गया है माला !"

माला सहसा चौंक उठी। वह आश्चर्य भरे स्वर में बोली—"कैसा सौदा ? मैं समझी नहीं।"

"नहीं जानती, आज के इस स्वार्थ-भरे युग में लड़के-लड़की का ब्याह एक सौदा होता है। मेरा............।"

अभी राममोहन इतना ही कह पाया था कि माला बोल उठी—"तो आपका ब्याह हो गया है ?"

राममोहन ने देखा माला का आनन मलीन पड़ गया है, और ललाट पर रेखाएँ खिंच आई हैं। वह कुछ परेशान-सी दृष्टिगोचर होने लगी थी। राममोहन उसकी स्थिति समझ गया। बोला—"हो गया ही समझो, क्योंकि कल तिलक चढ़ गया है।"

इसके बाद उसने सारी स्थिति माला को बताई। माला सुनती रही; लेकिन बोली कुछ नहीं। उसे ऐसा लग रहा था, विश्व में निश्चय की तो परिभाषा अब रह ही नहीं गई है, क्योंकि सत्य, ईमान और धर्म, सभी स्वार्थ के हाथों बहुत ही सस्ते मूल्य पर बिक गए हैं।

× + ×

दूसरे दिन राममोहन फिर माला के घर पहुँचा। उस समय दिन के दस बजे थे, और बदली के कारण सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। माला रसोई में थी। चाची पूजन पर बैठी गीता का पाठ कर रही थी। भगवान के सिंहासन पर एक कोने में अगर-

बत्ती लगी जल रही थी, जिसकी सुगंध कमरे में व्याप्त हो राममोहन का मन आनंदित कर उठी। दो-तीन गौरैयाँ चीं-चीं करती आईं, और भोग के लिये एक छोटी कटोरी में रक्खे इलायची-दानों में से एक-एक दाना चोंच में दाब फुर्र करके उड़ गईं। सहसा चाची का ध्यान इधर गया, और वह मुस्करा दीं। फिर रामायण के गुटके की जिल्द से उस कटोरी को ढक पुनः अपने कार्य में लग गईं। राममोहन चाची के पीछे खड़ा यह व्यापार देख रहा था। वह चाची का ध्यान भंग नहीं करना चाहता था कि यकायक एक चुहिया आई, और सालिगराम की मूर्ति पर चढ़े अक्षतों में का एक चावल लेकर भाग गई। राममोहन के मुँह से निकल पड़ा—"हुश !"

तभी चाची के नेत्र पीछे घूम गए। वह राममोहन की ओर देखकर हँस दीं, और जल्दी से पुस्तक बंद कर, भोग लगा, आरती कर, टन्-टन् घंटी बजाती हु शीश झुका, भगवान को प्रणाम कर, उसकी ओर उन्मुख होकर बोलीं—"अरे ! कब से खड़े हो तुम ?"

राममोहन उनके निकट जाकर बैठ गया, और 'नमस्ते' के शिष्टाचार का प्रदर्शन करता हुआ संकोच-भरी वाणी में किंचित मुस्कराहट के साथ बोला—"अभी-अभी आ रहा हूँ।"

"कल सुना, तुम आए थे, लेकिन मुझसे मिले बिना ही चले गए।" बात समाप्त होते ही चाची को हँसी आ गई।

राममोहन कुछ झेंप-सा गया; धीरे से बोला—'आपकी प्रतीक्षा तो बहुत की, पर आप आईं ही नहीं, और मुझे देर हो रही थी। इस लये चला गया चाची !"

"कैसी बातें करते हो भइया ! कौन-सा गुनाह किया है तुमने, जिसके लिये क्षमा माँगते हो ? मैं तो जानती हूँ, मेरे पूर्व के संस्कार उदय हुए हैं, तभी तो तुम्हारा-जैसा सुशील लड़का

मिला है।" यह कहकर चाची उठ खड़ी हुईं, और दूसरे कमरे की ओर जाती हुई उसकी ओर देखकर बोलीं—"आओ, चलें। ड्योढ़ी में चलकर बैठें।"

चलते-चलते राममोहन चाची से बोला—"एक बात कहूँ चाची?"

"क्या?" चाची अतीव स्नेह से भर आईं। उनको उस क्षण अपार हर्ष हुआ कि राममोहन उनके कितने निकट संपर्क में आ गया है, और साथ ही जिज्ञासा भी जाग उठी कि आखिर वह कहना क्या चाहता है?

"माला की पढ़ाई आपने क्यों बंद करवा दी?" राममोहन ने डरते-डरते कहा।

"उस दिन बता तो चुकी हूँ तुमको, परिस्थितियों से मैं मजबूर हो गई। नहीं तो भला मैं पढ़ाती नहीं अपनी लाड़ली को।" चाची ने ऊबकर एक साँस ली, और ड्योढ़ी में पहुँच तख्त पर बैठती हुई बोलीं—आओ, बैठो।"

राममोहन पास जाकर बैठ गया, और बोला—"पैसे की कमी तो आजकल हर औसत दर्जे के घर में मिलेगी। लेकिन उसके कारण कोई आवश्यक और महत्वपूर्ण काम रोकना तो समझदारी नहीं।"

"तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? "चाची ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"माला मैट्रिक कर ही चुकी है। मैं इसी ऑक्टोबर में फार्म भरवा दूँगा, और स्वयं आकर उसे पढ़ा भी दिया करूँगा। इस तरह वह परसाल इंटरमीडिएट की परीक्षा पास कर लेगी। फिर आगे देखा जायगा।" राममोहन ने अत्यंत मृदु और सरल स्वर में कहा।

चाची गद्‌गद् हो आईं। वे आर्द्र कंठ से बोलीं—"मुझे तुम्हारी हर बात मंज़ूर है।"

"बस फिर कल से मैं माला को पढ़ाना शुरू कर दूँगा।" राममोहन ने यह कहकर चाची को और भी तृप्त कर दिया।

राममोहन और चाची की बातें माला चौके में बैठी सुन रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, राममोहन मनुष्य नहीं, देवता है। वह सोचने लगी—कितने क्षोभ का विषय है, नई पौध के लिये इस युग में कोई संधि नहीं। उसे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुज़रने के लिये विवश कर दिया जाता है। उपयुक्त और अनुपयुक्त मार्गों की छानबीन करनेवाले अभिभावक सब कुछ भूल केवल अपना एक उत्तरदायित्व समझ लेते हैं कि जो मैं चाहूँगा, वही नई पीढ़ी को करना पड़ेगा। राममोहन का ब्याह हो रहा है, और वह इससे संतुष्ट नहीं। कितने खेद की बात है यह!

इधर चाची और राममोहन की बातें चल रही थीं, और उधर माला अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त थी। उसने पिछली रात जागकर ही बिताई थी। वह रात-भर मनन करती रही कि राममोहन से अधिक संपर्क बढ़ाना अब उसके लिये उचित नहीं। पता नहीं, क्या हो गया था उसे, जो राममोहन के प्रति ऐसी भावनाएँ उसके मन में उठ रही थीं। अब राममोहन उसे पराया-सा प्रतीत होने लगा था। वह उससे दूर-ही-दूर रहना चाहती थी। उसने चाची से भूलकर भी इस बात की चर्चा नहीं चलाई कि राममोहन का ब्याह हो रहा है। और, आज उसके सामने भी नहीं गई।

सहसा चाची ने आवाज़ लगाई।

"माला! अरी, सुन तो।"

माला चौंकी, और सँभलकर, धीरे से, चौके में बैठे-ही-बैठे बोली—"क्या है चाची?"

"खाने में कितनी देर है ?" कहते-कहते चाची उसके पास आ गईं।

"बस तैयार ही समझो।" माला का उत्तर एकदम सहज था।

"तो मैं राममोहन को भेजती हूँ अभी।" कहकर वह चली गईं।

माला के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह फिर विचारों में खो गई। उसने सोचा—समझ में नहीं आता, राममोहन मेरे परिवार के साथ इतना घुलता-मिलता क्यों जा रहा है ? वह कच्ची रसोई भी खाएगा मेरे घर में। चाची ने, पता नहीं, अपने मन में क्या सोच रक्खा है ? शायद उन्हें वास्तविकता का अंश-मात्र भी बोध नहीं कि राममोहन का ब्याह होने जा रहा है। कैसी विचित्र है यह दुनियाँ ! आदमी चाहता कुछ है, और होता कुछ है। कहने को तो धरती और आकाश मिले हुए हैं, और उस मिलन का अभिधान है क्षितिज, किंतु कोई भी पहुँचा है आज तक वहाँ ? चाची कुछ और सोच रही हैं। राममोहन अपना अशांत चित्त बहलाने के प्रयत्न में है, और मैं दोनों ही पक्षों का लक्ष्य हूँ। लेकिन परिणाम पर किसी का भी ध्यान नहीं जाता है। कैसा वैचित्र्य है !

और, जब राममोहन भोजन करके माला से यह कहता हुआ चला गया कि कल से आपकी पढ़ाई आरंभ हो जायगी, मैं ६ बजे शाम को आऊँगा, तो वह और भी अधिक हैरान हो उठी। वह मनन करने लगी—राममोहन की आखिर क्या धारणा है मेरे प्रति माना, वह उदार-हृदय, त्यागी, आदर्शवादी और सैद्धांतिक है, लेकिन यह किस सीमा तक मान्य है कि एक युवक एक युवती से अपने संबंध दृढ़ और अटूट बनाने का निश्चय कर ले ? मुझे तो ऐसे ही लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भारतीय संस्कृति

और पुरातन मर्यादा तभी तो इस नई पौध की खिल्ली उड़ाती है। कुछ भी हो, मैं अपनी सीमा के बाहर कभी न जाऊँगी। जो किसी अन्य का हो चुका है, उस पर फिर किसी दूसरे का क्या अधिकार ? आवश्यकता-भर ही संपर्क उसके साथ उचित है।

इसी प्रकार माला घंटों बैठी सोचती रही। लेकिन फिर भी उसके चित्त को शांति नहीं मिली।

७

छाया में पली माला अब देख-सुन और विचारकर भविष्य के पथ पर बढ़नेवाली एक युवती हो गई थी। उसे भली भाँति स्मरण था, उसका अतीत कैसा था। इसीलिये वर्तमान में सजग और सतर्क हो वह अपने निर्माण में व्यस्त हो गई। राममोहन नित्य उसे पढ़ाने आता, और वह इसी पृष्ठभूमि को लेकर अपना भविष्य उज्जवल बनाने के सपने देखा करती।

माला के पिता एक मध्यम श्रेणी के वकील थे। उनके परिवार में एकलौती माला, पत्नी और विधवा भाभी थीं। पत्नी की मृत्यु माला के जन्म के कुछ ही महीनों बाद तपेदिक से हो गई, और अभी वह अपना दूसरा ब्याह रचाने की सोच ही रहे थे कि स्वयं भी प्लेग के प्रकोप का शिकार हो गए।

अब घर में रह गई केवल माला और उसकी चाची। बैंक की संपत्ति दिनों दिन क्षीण होती चली गई। निज का घर था, इसलिये चाची ने दूसरी मंजिल पर एक तीस रुपए का किराए-दार रख लिया। किराएदार और माला के परिवार से कोई विशेष संपर्क नहीं था, क्योंकि बाहर से ही ऊपर जाने के लिये ज़ीना था।

माला की पढ़ाई जैसे-तैसे करके दसवीं कक्षा तक तो चल गई, लेकिन बाद में चाची पूर्णतया असमर्थता के हाथों की कठपुतली बन गईं। बैंक का सारा रुपया समाप्त हो चुका था। किराया केवल तीस ही रुपए मासिक मिलता था। इतने में दो पेट

आखिर कैसे पलते ? विवश होकर चाची को दूसरा मार्ग अपनाना पड़ा। उन्होंने चर्खे का आश्रय लिया। अवकाश के समय वह सूत कातने बैठ जातीं, और जब पर्याप्त मात्रा में एकत्रित हो जाता, तो माला पड़ोस के खादी-भंडार में जाकर दे आती। इस भाँति सब मिलाकर कुल आय लगभग पचास-साठ रुपए की हो जाती। यही इस परिवार की जीविका थी।

धीरे-धीरे माला राममोहन से खूब हिल-मिल गई। पढ़ाई आरंभ करने के पूर्व परस्पर अपने-अपने घरों के अतीत, वर्तमान और किसी घटना विशेष को लेकर वार्ता चलती, और ऐसे ही पढ़कर उठते-उठते गांव-घर का विषय चल जाता। उभय पक्ष एक दूसरे की परिस्थितियों से पूर्णतया विज्ञ हो चुके थे अतः अब इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता था कि कोई बात अधिक देर तक किसी के मन में रुके।

कॉलेज में डिबेट थी। राममोहन को अपने विषय पर बोलना था, और समय छः से अधिक का हो रहा था। लेकिन लिस्ट में उसका नाम शायद सबसे अंत में था। डिबेट में बोलना आवश्यक था अतः वह उस दिन फिर माला के घर न जा सका। माला ने बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा की। ऐसा ही दूसरे दिन हुआ। उस दिन कालेज में संगीत-प्रतियोगिता थी। और तीसरे दिन जब वह शाम को दस बजे माला के घर जा रहा था तो अचानक मार्ग में एक प्रोफ़ेसर मिल गये। उनके साथ उसको पब्लिक लाइब्रेरी तक जाना पड़ा, इससे बिलम्ब हो गया।

माला बैठे-बैठे ऊब गई थी। वह कमरे से उठकर जा ही रही थी कि राममोहन आ पहुँचा। वह मुस्कराता हुआ कुर्सी पर बैठ धीरे से बोला—"दो दिन तो आपने खूब राह देखी होगी ?"

"तो आज ही आप कौन जल्दी आ गए हैं।" कहकर माला ने अपनी रफ़ कापी खोल ली, और उसी पर दृष्टि टिका दी।

राममोहन ने उसकी मुद्रा देखी। वह समझ गया, मेरे दो दिन न आने से शायद माला नाराज़ है हँसकर बोला—"अच्छा तो आज आप" गुस्से के मूड में हैं ?"

"मुझे क्या हक़ है क्रोध करने का। हाँ, सिविक्स के प्वाइंट्स बोलिये।" कहकर उसने पेंसिल हाथ में पकड़ ली और लिखने का आयोजन करके बैठ गई।

"इतनी क्या जल्दी है ? अभी बोलता हूँ। पहले आप··· ।"

अभी वह इतना ही कह पाया था कि माला व्याघात बनकर बीच में बोल पड़ी—"देखा, मेरा आपका गुरु और शिष्य का संबंध है लिहाज़ा मुझे आप कहकर शर्मिंदा न कीजिए। आप न कहकर यदि तुम कहें, तो अधिक अच्छा हो।"

"आज तो सारा खाका एकदम ही बदल गया है। आख़िर बात क्या है ?" राममोहन का हृदय अतीव प्रेम के वशीभूत हो ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

"मैं कुछ भी नहीं जानती।" कापी पर पेंसिल बजाते हुए माला ने जबाव दिया।

राममोहन एक क्षण तक मौन रहा और माला के कृत्रिम क्रोध-मिश्रित व्यापार को देखता रहा जिस में कूट-कूट कर आत्मीयता का पुट समा रहा था। फिर कुछ देर बाद उसके मुख पर दृष्टि टिका अत्यन्त शांत स्वर में बोला—"अगर आप कुछ बताएंगी नहीं, तो मैं वास्तविकता की तह तक कैसे पहुँच सकूँगा ?"

"फिर आपने मुझे आप कहा। तुम कहिए मिस्टर तुम।" माला यह कहकर उसकी ओर देखने लगी, जिससे राममोहन को हँसी आ गई। वह हँसकर बोला—

"बड़ी आफ़त है। समझ में नहीं आता, क्या करूँ। अच्छा एक शर्त है।"

क्या माला ने आतुरता के साथ पूछा।

"तुम भी मेरे लिये इसी संबोधन का प्रयोग किया करो,

माला बात काटकर कहने लगा—"यह अनुचित है और मेरे लिये बिल्कुल शोभा नहीं देता।"

"तो फिर मुझे भी बाध्य न करिये।" राममोहन बात कहता जा रहा था, और मुस्कराहट की रेखा उसके होठों पर खिंची हुई थी।

माला निरुत्तर रही। वह राममोहन के मुख की ओर अपनी गंभीर दृष्टि से निहारने लगी।

राममोहन ने उसकी इस क्षण की परिवर्तित मुद्रा देखी, तो सामने खुली रक्खी कापी को बन्द करता हुआ उसके नेत्रों में झाँक कर बोला—"आज पढ़ाई नहीं होगी।"

"यह तो मैं पहले से ही जानती थी कि तुम......।" कहते-कहते वह रुक गई और संशय-पूर्वक राममोहन की ओर दृष्टि डाली।

"रुक क्यों गईं? कहो न क्या कहती थीं! आज तुम्हें क्या हो गया है माला?" राममोहन ने उसकी नारी-सुलभ दुर्बलता को पकड़ लिया था।

माला के लिये भी अब अपने को सँभालना कठिन हो गया वह रुआसी सी होकर क्षीण वाणी में बोली—"तुम दो दिन तक आये क्यों नहीं?"

राममोहन को माला के इस प्रश्न से ऐसा लगा, मानो यह उस पर आत्मीयता के नाते अपना अत्यधिक स्वत्व समझती है। उसे मन-ही-मन ऐसा आभास हुआ, जैसे माला उसके प्रति अपना पूर्णरूपेण उत्तरदायित्व समझकर जीवन-पथ पर बढ़ रही है।

वह सोचने लगा—माला मुझसे प्रत्येक बात पूछ सकती है, और मुझे उससे भेद रखना बहुत बड़ा गुनाह होगा। एक ही क्षण में उसने इतना सब सोच डाला, और दूसरे क्षण उसकी ओर नेत्र उठा, सरल मुद्रा में धीरे से बोला—"क्या तुम जानती हो, मैं जान बूझकर नहीं आया ?"

"यह मैं कैसे कह दूँ" कहकर माला नीचे देखने लगी।

राममोहन ने उसका सिर ऊपर उठाया और धीरे-धीरे सारी वास्तविकता उसको बता दी। तब जाकर माला को संतोष हुआ।

इसके बाद बड़ी देर तक दोनों में वार्तालाप चलता रहा।

एकांत में माला सोच रही थी, यह कैसी विचित्रता है ? मैं राममोहन की ओर स्वयं ही खिंची चली जा रही हूँ। अगले सप्ताह उसका ब्याह है। वह घर-गृहस्थी वाला बन जायेगा। फिर क्या मुझे उससे मिलना शोभा देगा ? लेकिन क्या करूँ ? यह मन तो ऐसा है कि मानता ही नहीं। मैं तो केवल यह जानती हूँ, मुझे राममोहन से बातें करने में अच्छा लगता है, और जब वह उठ कर चला जाता है, तो जान पड़ता है, मेरी कोई वस्तु खो गई है ! मुझे दुनियाँ भर की व्यर्थ की बातों से क्या प्रयोजन ? राममोहन का ब्याह हो, चाहे गौना। इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ होता है, हुआ करे। मैं अपनी दुनिया में मगन हूँ। काश ! भविष्य भी ऐसा बना रहे।

और राममोहन अलग ही आश्चर्य में डूबा हुआ था कि आखिर माला को हो क्या गया है। वह कितनी शरमीली थी, और अब कितनी खुल गई है मेरे सामने। मैं जितना ही अपने पर नियंत्रण रखता हूँ, उतना ही मन माला की ओर अटकता जाता है। ऐसा लगता है मानो मेरा और उसका जन्म-जन्मांतर

का संबंध है। कहा नहीं जा सकता, यह परस्पर का बढ़ता हुआ व्यवहार किस धारा में और कब तक बहता रहेगा।

इन सब बातों के साथ-साथ राममोहन यह भी सोच रहा था कि चार-पाँच दिन बाद मुझे गाँव तो जाना ही पड़ेगा। इसके बिना गति नहीं।

नियत समय से दो दिन पहले ही माला को बताकर वह एक दिन गाँव चला गया। माला ने हँसते-हँसते उसे बिदा दी।

भोली कंचन परसोला-गाँव के वातावरण में पली जब अपने ससुराल हरिगाँव आई, तो वह मन में फूली नहीं समा रही थी कि कितना योग्य पति मिला है उसे ! पालकी का आवरण हटाकर उसकी ग्यारह-वर्षीया ननद अपने भाई राममोहन की ओर देखकर, पुलकती हुई कहने लगी—"भैया, आओ, तुम्हें दिखाऊँ कि मेरी भाभी कितनी गोरी है !", और यह कहकर उसने चट से अपनी भाभी का घूँघट हटा दिया।

कंचन शरमा गई, और उसने जल्दी से अपनी पलकें बंद कर लीं। राममोहन यह कहता हुआ—"रूपा, तू बड़ी ढीठ हो गई है।" उसे मारने दौड़ा।

रूपा खिलखिलाती हुई वहाँ से भाग गई।

सुमन-सी सुकुमार और दूब की तरह कोमल कंचन ने अपनी विलक्षण रूप-राशि से सबको मोह लिया। उसकी कटोर सी बड़ी-बड़ी आँखें और आम की फाँकों से होठ सास देवकी को बहुत ही भाए। गोरी त्वचा और अच्छा नखशिख देखकर गाँव की स्त्रियाँ मुग्ध हो उठीं। गाँव-भर में सर्वत्र कंचन के रूप की चर्चा चल रही थी। यद्यपि कंचन अधिक पढ़ी-लिखी न थी, उसके मृदुल स्वभाव और अद्वितीय सुंदरता पर सभी संतुष्ट थे।

लेकिन राममोहन का विचार घर में सबसे पृथक थे। वह वह सोच रहा था, उसे अनाड़ी और फूहड़ पत्नी मिली है।

केवल चार कक्षा तक हिंदी की शिक्षा पाई हुई स्त्री उसके किस काम की? दुनियाँ में रूप ही सब कुछ नहीं होता, योग्यता भी कुछ अर्थ रखती है। माना, कंचन सुंदर है, लेकिन वह मेरे लिये बिल्कुल अनुपयुक्त है।

दुनियाँ का दस्तूर बदला नहीं जा सकता, और कोई भी प्राणी परंपरा के विरुद्ध आंदोलन नहीं खड़ा कर सकता। पति ही स्त्री का सर्वस्व है। सुहागरात आई। कंचन और राम-मोहन की प्रथम भेंट एक व्यावहारिक नाते को लेकर हुई। कंचन उत्सुक थी, उसका पति उसे सिर आँखों पर उठा ले। किंतु राममोहन ने कमरे में प्रवेश करते ही उससे कहा—"मुझ-से पर्दा न करो कंचन! यह सब नहीं चलेगा, बिल्कुल नहीं चलेगा। मैं तुमसे कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ।"

कंचन एकदम सहम गई। सकुची बैठी रही। साहस न हुआ, घूँघट हटाए। धीरे-धीरे आगे बढ़ी, और राममोहन की चरण-रज लेकर माथे से लगा ली।

किंतु राममोहन पत्नी के इस व्यापार से संतुष्ट नहीं हुआ। वह खीझकर बोला—"ये सब बातें मुझे बिल्कुल नापसंद हैं। मैं जो कहता हूँ, सुनो।"

कंचन की आकुलता इस समय अत्यधिक बढ़ गई थी। वह बिल्ली की भाँति दुबककर बैठ गई, और प्रतीक्षा करने लगी कि उसका पति उससे क्या कहता है।

"तुम मेरी पत्नी हो, इससे मैं इंकार नहीं करता, लेकिन मैं तुम्हें अपना प्यार नहीं दे सकता।" यह कहने के साथ ही राम-मोहन ने कंचन का घूँघट उठा दिया।

वह भीता हिरनी की भाँति सहम उठी, और रोकर बोली—"मुझे क्षमा कर दें। मैं नहीं जानती, आप क्या चाहते हैं?"

"मैं तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे तुमसे घृणा है।" राममोहन ने सत्य को पत्नी के सामने उगल दिया।

"फिर ?" कंचन ने दबते-दबते उससे पूछा।

"तुम केवल नारी हो, और ऐसी, जो असलियत की हद तक कभी नहीं पहुँच सकतीं। मुझे माफ़ कर दो कंचन ! मैं तुम्हारा कभी नहीं हो सकता।" राममोहन यह कहने के साथ ही कमरे से बाहर जाने लगा। लेकिन कंचन ने उसका पल्ला थाम लिया। वह रोकर बोली—"कहाँ जाते हो ? मेरी बात तो सुनो।"

"क्या सुनूँ पत्थर ? तुम मुझे अपनी ओर इस जीवन में कभी नहीं मोड़ सकतीं। मैं तुमसे नफ़रत करता हूँ।" कहकर राममोहन पुनः बाहर जाने को उद्यत हुआ।

परंतु कंचन ने उसका कुर्ता पकड़ लिया। वह रोते-रोते बोली—"मेरा क्या अपराध है ? बताओ न !"

"मैं कुछ नहीं जानता, कुछ भी नहीं जानता। बस, तुम चली जाओ मेरे सामने से।" कहने के साथ ही राममोहन विद्युत्-वेग से कमरे के बाहर निकल गया।

कंचन घंटों खड़ी सिसकती रही। लेकिन फिर राममोहन वापस नहीं आया।

कंचन सोचने लगी—क्या हो गया है मेरे पति को ? मैंने तो सुना था, वह एकदम साधु पुरुष हैं। फिर यकायक क्या हो गया उनको ? कहीं ऐसा तो नहीं, वह किसी दूसरे के हो चुके हों, और मैं बीच में अनायास ही रोड़ा बनकर आ अटकी हूँ ? क्या दुनियाँ है कि पुरुष अपनी जीवन-संगिन को प्यार नहीं करता ! कृत्रिमता के हाथों की कठपुतली हो रहा है आज वह।

कंचन इसी प्रकार अपने और राममोहन के प्रति सोचती रही, किंतु निष्कर्ष कुछ भी न निकला। राममोहन, पता नहीं कब से, कमरे के बाहर जा चुका था।

दूसरे दिन राममोहन कंचन से फिर मिला, और आते ही बोला—"तुम नहीं जानती कंचन, जौहरी काँच को हीरा कभी नहीं समझ सकता। तुम मेरी आँखों के सामने से दूर हो जाओ, नहीं तो मैं अपना गला स्वयं ही घोंट लूँगा।"

कंचन पति के सामने से चली गई, और फिर कभी उसके सामने नहीं आई।

× × ×

संसार में दुःख और सुख की एक सीमा है। मर्यादा का उल्लंघन कर व्यक्ति कभी जीवित नहीं रह सकता। कंचन रुसवाई के घूँट पीते-पीते थक गई थी। वह सोचने लगी, जिसके भाग्य में जो बदा होता है वह उसे अवश्य मिलता है। मेरी तकदीर में यही लिखा होगा। दुनिया मेरे रूप पर मरती है, और जो मेरा जीवन-सर्वस्व है, वह घृणा करता है। काश मेरे पिता ने मुझे भी पढ़ा-लिखाकर योग्य बना दिया होता!

ऐसे ही कंचन नित्य नए विचारों में उलझी रहती। राममोहन गाँव से कानपुर चला आया। लेकिन आते समय भी वह कंचन से नहीं मिला। कंचन एकांत में खूब रोई, और रोते-रोते अपनी आँखें सुजा लीं। घर में सास और ससुर भी इस मर्म से विज्ञ हुए बिना नहीं रहे। किंतु वे कर ही क्या सकते थे? पति-पत्नी के किसी भी मामले में पड़ना मूर्खता है। दंपत्ति के झगड़े और मनमुटाव की भी भला कोई अवधि होती है? कृष्णमोहन ने तो ऐसा सोचकर टाल दिया। परंतु देवकी भविष्य के लिये चिंतित हो उठी।

और, कंचन को ऐसा लगने लगा कि अब उसका पति जीवन में शायद न कभी उसे स्पर्श करेगा, और न उससे बोलेगा ही। यह धारणा मन में जमते ही वह फिर फूटकर रो पड़ी, और रोते-रोते पिता के साथ चौथी की रस्म चुका पीहर चली गई।

६

कैसा भी दुःख अथवा पीड़ा हो, आत्मीय के सम्मुख वह अनायास ही प्रकट हो जाती है। राममोहन विषाद में डूबा हुआ कानपुर पहुँचा, और माला को एक-एक बात बता दी। यह सुनकर माला को भी अत्यंत क्षोभ हुआ कि राममोहन को योग्य पत्नी नहीं मिली। फिर भी उसने राममोहन को समझाया। वह बोली—"इसमें कंचन का क्या दोष है? तुमने उसके मन को व्यर्थ ही ठेस पहुँचाई।"

राममोहन ठुड्डी पर हाथ रक्खे बैठा रहा, और माला कहती रही—"नारी तो अबला होती है। उसके साथ पुरुष का अन्याय सदा से चलता आया है। क्या तुम भी उसी परंपरा की जंजीर में बँध गए? जो सामने आ पड़ा है, अब तो उसका निर्वाह करना ही पड़ेगा।"

"मुझे विवश न करो माला! मुझसे यह कुछ भी नहीं हो सकेगा। मैं अपनी जिंदगी की ज्योति बुझाने के लिये तैयार हूँ, लेकिन कंचन को पत्नी के अधिकार नहीं दे सकता। वह अपढ़ है, गँवार है। उसके रूप को लेकर चाटूँ, ओढ़ूँ, बिछाऊँ या क्या करूँ? तुम्हीं बताओ न?" कहकर अपराधी की भाँति राममोहन माला की ओर निहारने लगा।

"मैं क्या बताऊँ? मेरी बात मानते भी हो तुम?" कहकर माला उदास हो दूसरी ओर मुँह फेरकर बैठ गई।

"कौन-सी बात मैंने नहीं मानी तुम्हारी ? कहो, क्या कहती हो ?" राममोहन की वाणी आर्द्र हो गई, और साथ ही आँखें भी डबडबा आईं ।

"तुम्हें कंचन को अपनाना ही पड़ेगा ।" माला ने साहस-पूर्वक कहा, और फिर आक्रोशभरी मुद्रा से राममोहन की ओर देखने लगी ।

"माला !" राममोहन ने गरजकर कहा । इस समय उसकी आँखें रक्त-वर्ण हो रही थीं ।

"शायद तुम भूल गई कि तुम मेरी शिष्या हो ।" कहकर राममोहन ने उस पर रोब जमाना चाहा ।

लेकिन माला कच्ची गोलियाँ कब खेले थी ? उसने भी मुँह-तोड़ उत्तर दिया—"और शायद तुम भी भूल गए कि आप से उतरकर तुम पर आ गए हो । क्या ऐसे ही संबंध होते हैं गुरु और शिष्या के ?"

राममोहन अब बुरी तरह खीझ गया था । वह चिढ़कर बोला—"तो क्या तुम चाहती हो कि मैं उठकर चला जाऊँ ?"

"मेरी बला से ।" उपेक्षा-पूर्वक माला ने कहा, और फिर अँगड़ाई लेकर कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई ।

राममोहन भी अतीव क्रोध से भर आया था । वह भारी क़दम रखता हुआ तेज़ी से कमरे के बाहर निकल गया ।

पूस की सरदी-भरी रात में राममोहन मकान की छत पर टहल रहा था । इस समय लगभग दो बजे थे, और पूर्णिमा का रुपहला चाँद आकाश में निकला हुआ था । उसकी रजत-चंद्रिका में नहीं, ठंड से ठिठुरता हुआ राममोहन सोच रहा था, मैंने व्यर्थ ही माला को नाराज़ कर दिया । क्या सोचती होगी वह अपने मन में मेरे प्रति ? ऐसा लगता है, माला मेरे जीवन-संगीत की वह कड़ी है, जिसके विना लय, स्वर और

ताल सभी व्यर्थ हैं। मन तो होता है, अभी जाकर उससे क्षमा माँग लूँ। लेकिन चाची······?

अभी वह ऐसा सोच-विचार ही रहा था कि निकटवर्ती पुलिस-चौकी में टन-टन करके दो का घंटा बजा, और साथ ही हवा का एक इतना तेज़ झोंका आया कि उसके दाँत बजने लगे, और शरीर के सारे रोए खड़े हो गए।

किसी भाँति सबेरा हुआ। राममोहन माला के घर पहुँचा, और चाची के सम्मुख जा माला की ओर उन्मुख होकर बोला—"आज तुम्हें अपने कॉलेज की प्रिंसीपल से मिलना है। कल रात को अचानक फूलबाग़ के चौराहे पर मेरी और उनकी भेंट हो गई थी, तो मैंने तुम्हारी पढ़ाई वाली चर्चा छेड़ दी। सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई, और बोलीं—"कल सबेरे माला को कालेज भेजना। मैं उससे बात करूँगी। तुम्हें अभी चलना पड़ेगा मेरे साथ।"

माला ने उसकी बात सुनकर चाची की ओर देखा। चाची उसका आशय समझ गईं। वह प्रसन्न होकर बोलीं—"जाती क्यों नहीं? मेरा मुँह क्या देखती है?"

बस फिर क्या था, माला राममोहन के साथ चल दी। लेकिन जब रिक्शा कॉलेज छोड़ता हुआ आगे बढ़ने लगा, तो उसने हैरान होकर राममोहन से पूछा—"कॉलेज तो पीछे छूट गया। आखिर चल कहाँ रहे हो?"

"मंज़िले-मकसूद।" कहकर राममोहन हँस दिया।

माला कुछ भी समझ न पाई। वह राममोहन की रहस्य-मयी हँसी देखकर विस्मय में पड़ गई, और व्यस्त स्वर में पूछने लगी—"क्या बात है? कहाँ चल रहे हो? बताते क्यों नहीं?"

राममोहन मुस्कराता रहा। मुँह से एक शब्द भी नहीं बोला। तब तक कटहली-बाग़ के फाटक के सामने जाकर रिक्शा रुक गया।

राममोहन ने रिक्शे वाले को पैसे दिए, वह चला गया। उसके बाद वह माला की आँखों में आँखें डालकर अत्यंत मृदु स्वर में बोला—"कल तुम्हें नाराज़ कर दिया था न मैंने, इसीलिये मनाने को लिवा लाया हूँ। कोई एतराज़ तो नहीं है? अगर हो, तो अभी वापस जा सकती हो।"

उत्तर में माला मुस्करा दी, और राममोहन के पैर फाटक की ओर घूम गए।

बाग़ में इस समय विशेष चहल-पहल न थी। कुछ थोड़े-से बालक और बालिकाएँ यत्र-तत्र दौड़कर खेल रहे थे, और बाग़ के कर्मचारी माली लोग सफ़ाई, पौधों की सिंचाई तथा मेंहदी कतरने आदि कार्यों में व्यस्त थे। फीकी-फीकी धूप बड़े पेड़ों की घनी छाया में से छन-छनकर नीचे आ रही थी। गुलाब और गेंदे की क्यारियों के बीच जो बेंच पड़ी थी, राममोहन उसी पर बैठना चाहता था, लेकिन वहाँ पर धूप बिल्कुल न थी। पेड़ों के नीचेवाली बेंचों पर बैठने के लिये वह कभी प्रस्तुत न था, क्योंकि उसे भय था कि कहीं ये चहकती और चीं-चीं करती हुई चिड़ियाँ कपड़ों पर बीट न कर दें। विवश वह धूप का लालच छोड़ गुलाब की क्यारी के पास ही बैठ गया। माला भी पास ही बैठ गई।

कुछ क्षणों तक उभय पक्ष मौन रहे। फिर धीरे-से राममोहन ने नीरवता भंग की। वह माला के मुख पर अपनी दृष्टि टिकाकर बोला—"माला, जी चाहता है, हमेशा तुम्हारे ही पास बैठा रहूँ। पता नहीं, तुम्हारी हर बात मुझे अत्यधिक प्रिय क्यों लगती है?"

माला पिछली रातवाला अपना सारा क्रोध भूल गई। वह संकोच-भरी वाणी में शरमाकर बोली—"मैं क्या बताऊँ? हाँ, इतना अवश्य कहूँगी, मुझसे अधिक संपर्क बढ़ाना तुम्हारे लिये उचित नहीं।"

"क्यों?" छूटते ही राममोहन ने प्रश्न किया।

"क्योंकि तुम पर किसी दूसरे का स्वत्व है।" माला भी हँसते-हँसते यह कह गई।

"फिर वही पुराना पचड़ा।" राममोहन ने नाक और भौं सिकोड़कर कहा, और तनिक रुककर फिर कहने लगा—"कंचन मेरी पत्नी अवश्य है, लेकिन मैं उसके अधिकारों को मान्यता नहीं देता। यह बात तुमसे कई बार कह चुका हूँ, लेकिन पता नहीं, तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आता?"

"अगर सही बात कह दूँगी, तो फिर तुम चिढ़ जाओगे। जमाना ही ऐसा है, बिना उपड़-चुपड़ और लल्लो-चप्पो किए काम ही नहीं चलता।"

माला की यह बात राममोहन को बुरी नहीं लगी। वह हँस दिया, और कहने लगा—"तुम्हारा गुस्सा भी कितना प्यारा लगता है! अच्छा बाबा, खरी ही खरी कह लो। क्यों लल्लो-चप्पो और दुनियादारी के चक्कर में पड़ोगी?"

इस पर माला खिलखिला कर हँस पड़ी। राममोहन भी उसकी हँसी में अपना योग देने लगा।

थोड़ी देर बाद जब ये लोग बाग से बाहर आए तो माला अत्यंत प्रसन्न थी, और राममोहन? उसका तो कहना ही क्या! वह खुशी से पागल हो रहा था।

\+ \+ \+

माला की चाची के आधे से अधिक बाल सफ़ेद हो गए थे। उनका अनुभव ही अंतर्ज्ञान बन गया था। माला और राम-मोहन की परिस्थिति से वह पूर्णतया विज्ञ हो गईं—सब भाँप गईं, दोनो किस पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। उनकी बढ़ती हुई प्रीति देखकर चाची की आँखें खुल गईं। पहले तो वह इस ओर से बिल्कुल निश्चिंत थीं, और सोचती थीं, भविष्य में माला और राममोहन को परिणय-सूत्र में बँधना ही है, फिर चिंता किस बात की? लेकिन जिस दिन से उन्हें पता लगा, राममोहन का ब्याह हो गया है, उस दिन से वह सजग हो गईं, और माला को यह सोचकर राममोहन के पास पढ़ने से मना नहीं किया कि चलो, थोड़ा और पढ़ जाय, तो अच्छा ही है।

परंतु बूढ़ी आँखें कभी धोखा नहीं खा सकतीं। चाची ने माला और राममोहन के बीच में व्याघात बनना उचित नहीं समझा। वह माला के लिये वर की तलाश करने लगीं, और यह सोचकर संतोष कर लिया कि ब्याह हो जाने के बाद बिना बयारी के ही जूना टूट जायगा।

मनुष्य सोच नहीं पाता कि जिस स्थिति में वह आज है, क्या कल भी उसी स्थिति में बना रहेगा? सपना केवल उतनी ही देर तक अच्छा लगता है, जब तक नींद नहीं टूटती। आँखें खुलने के बाद उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता। ऐसे ही माला की चाची ने भी यह स्वप्न देखा था कि माला के ब्याह के लिये उनको हैरान नहीं होना पड़ेगा, राममोहन बहुत ही सीधा और समझदार लड़का है। लेकिन जब यह आशा निराशा में परिणत हो गई, तब भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। वह सोचने लगीं, मकान गिरवी रखकर वह माला का कन्या-दान ले लेंगी। किन्तु अब तो परिस्थिति कुछ और ही हो गई थी। माला और राम-

मोहन की बदलती आँखें देख-देखकर उनकी जान सूखी जाती थी। वह दिन-रात इसी चिंता में घुला करतीं कि माला का पैर कहीं ऊँचे-खाली में न पड़ जाय। सदैव मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना किया करतीं, और जब मन चिंता के भार से अधिक बोझल हो उठता, तो दोनों हाथ बाँध, नत-मस्तक हो बड़े ही करुण स्वर में कहने लगतीं—

"भगवन्, लाज रख लेना।"

१०

राममोहन का गौना था। कृष्णमोहन ने उसे बुला लाने के लिये गाँव से आदमी भेजा। लेकिन राममोहन ने यह कहकर टाल दिया कि परीक्षा निकट आ गई है, ऐसी स्थिति में उसका गाँव जाना किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। विवश होकर कृष्णमोहन स्वयं ही संबंधियों और नाई के साथ जा बहू को बिदा करा लाए, क्योंकि मुहूर्त टला जा रहा था।

कंचन को घर छोड़ कृष्णमोहन कानपुर आए, और आते ही पुत्र को आड़े हाथों लिया। गरजकर बोले—"क्यों बे छोकरे! तेरी इतनी हिम्मत कि मैंने बुलाया, और तू आया नहीं। सारी चौकड़ी दो दिन में भूल जाओगे। जानते नहीं हो तुम हमको।"

राममोहन कुछ नहीं बोला। वह नीचे सिर झुकाए बैठा रहा, कृष्णमोहन कहते गए—"लड़के नहीं, तुम हमारे दुश्मन हो। जी चाहती है, तुम्हारी जान ले लूँ।"

"तो मैंने इंकार कब किया है पिताजी? आप तो अपनी ही कहे जा रहे हैं। कुछ मेरी भी तो सुनिए।" दीन स्वर में राममोहन ने डरते-डरते कहा।

"क्या सुनूँ पत्थर! पढ़-लिखकर तुमने अपनी बुद्धि ही खो दी। बहू घर में आ गई है। मेरे साथ घर चलो, नहीं तो नतीजा तुम्हारे हक में अच्छा नहीं होगा।" कृष्णमोहन का स्वर शासन-युक्त हो गया था।

लेकिन राममोहन फिर भी दीन ही बना रहा। वह रुआँसा होकर बोला—"परीक्षा के सिर्फ़ बारह दिन रह गए हैं। इस समय मुझे मजबूर न कीजिए पिताजी !"

"मैं कुछ नहीं जानता। चाहे दो ही दिन के लिये चलो, लेकिन तुम्हें चलना ज़रूर पड़ेगा।" कृष्णमोहन फिर उसी लहजे में अपना रोब जमाते रहे।

"पिताजी !" बहुत ही करुण स्वर में राममोहन के मुँह से निकला। ऐसा लगता था, उसके हृदय का तार-तार रो रहा है।

"बको मत ! मुझे फ़िज़ूल की बकवास बिल्कुल नहीं पसंद है। मैं तो कहता हूँ, क्या होगा आगे पढ़कर ? बहुत पढ़ चुके। बस अब क़िस्सा ख़त्म करो।" कृष्णमोहन अपनी दून की हाँक रहे थे।

"ऐसा न कहिए पिताजी ! नहीं तो मैं बरबाद हो जाऊँगा। मैं रिसर्च करके साहित्य-क्षेत्र में उतरना चाहता हूँ। मेरी रुचि का गला न घोंटिए।" यह कहते-कहते राममोहन की आँखें डबडबा आईं।

किंतु कृष्णमोहन पर इसका किंचित-मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी ही ज़िद्द पर अड़े रहे, और पुत्र को घृणा की निगाह से देखते हुए अहम् के गहरे सागर में डुबकी लगाकर बोले—"किस चीज़ की कमी है तुम्हारे घर में ? मुझे अब पढ़ाई बिल्कुल नहीं चाहिए। घर का काम देखो। कोई मेरे दो-चार लड़के नहीं बैठे हैं। सामान बाँधो, और अभी, इसी समय, मेरे साथ चलो।"

राममोहन बाप की अवज्ञा न कर सका। वह मन मसोसे हुए उनके साथ चल दिया।

⊞ × ×

साहित्य का पुजारी कभी सुरा का व्यापारी नहीं बन सकता, और लगनशील व्यक्ति कभी अपने मंतव्य से पीछे नहीं हट सकता। दुनियाँ जानती है, पारखी दृष्टि सोने के बदले मिट्टी को कभी ग्रहण नहीं कर सकती। ऐसे ही राममोहन किसी भी तरह कंचन को नहीं अपना सका। इस प्रसंग को लेकर बाप-बेटे में वाक्युद्ध भी हुआ। जो राममोहन बाप के सम्मुख बोलना नहीं जानता था, उसने खूब डटकर उनसे तर्क किया, और जब वह रुष्ट होकर शहर जाने लगा, तो देवकी ने कंचन को उकसाया कि वह भी उसके साथ जाकर वहीं रहे। मगर कंचन नागरिक जीवन की अभ्यस्त न थी। सास के लाख ज़िद करने और समझाने-बुझाने पर भी वह पति के साथ कानपुर न जा सकी।

जिस प्रकार शरीर में कोई चोट लग जाने से पर्याप्त मात्रा में रक्त निकल जाता है, और मनुष्य निर्जीव-सा हो जाता है, उसी प्रकार अत्यंत व्यथा पहुँचती है नारी को, जब उसका पति उसे ठुकरा देता है। कंचन की राममोहन ने उपेक्षा ही नहीं की थी, बल्कि उसे सदा-सर्वदा के लिये त्याग भी दिया था। वह विनय-शील, रूपवती और मृदुभाषिणी होकर भी पति के हृदय के एक कोने में भी स्थान न पा सकी। उसे अपना जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा। उसके मन में दिन-रात हूक उठा करती, और वह एकांत पा खून के आँसुओं रो-रोकर अपना आँचल भिगोया करती।

कंचन को अपने जीवन से बड़ी निराशा हो गई थी। यद्यपि उसकी उम्र अभी केवल सोलह या सत्रह ही साल की थी, तद्पि बुद्धि का उसमें अभाव न था। वह सोचने लगी—उसका जीवन अब इस संसार में बिल्कुल व्यर्थ है। पति का प्यार खोकर वह भला कैसे जीवित रह सकेगी? वह नारी के अधिकार नहीं

चाहती थी; केवल पति के प्यार की भूख थी उसे। उसकी स्थिति इस समय उस मरणासन्न रोगी की भाँति थी, जो कभी तो निराश हो जाता है कि मैं अब नहीं बचूँगा, और कभी आशा के सुनहले सपने देखने लगता है कि मैं अच्छा अवश्य हो जाऊँगा। ऐसे ही कंचन का भी अंतर्द्वंद्व चल रहा था। वह घंटों मनन किया करती, क्या कोई ऐसी युक्ति नहीं हो सकती, जिससे अपने स्वामी के चरणों में स्थान पा सकूँ? क्या संसार-सागर इतना गहरा है कि उसमें दिन-रात डुबकियाँ लगाने पर भी आशा का किनारा नहीं मिल सकता? मुझे तो ऐसा लगता है, आज के इस युग में समस्त विश्व निराशा के गहन कोहरे से ढका हुआ है।

इसी प्रकार बेचारी कंचन हमेशा विचारों में उलझी रहती; पर किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँच पाती। दिन-रात सोचना और ऊब-ऊबकर साँसें लेना उसका एक-मात्र व्यापार हो गया था। उसके मुख की कांति स्वतः ही क्षीण होती जा रही थी, और अंतर तक रो उठा था।

११

नदी की बाढ़ किसी भी भाँति रोकी नहीं जा सकती। जिस समय उसका प्रवाह उग्र रूप धारण कर लेता है, उस समय बड़े-से-बड़े और दृढ़-से-दृढ़ बाँध भी उसके सम्मुख अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। प्रेत-स्वरूप खड़े गगन-चुंबी कगार ढह-ढहकर सरिता के गर्भ में विलीन होने लगते हैं, और कूल भी स्वच्छं-दता के हाथों की कठपुतली बन इतरा-इतरा सीमा की मर्यादा भुला बैठते हैं। लेकिन बाढ़ का पानी एक स्थान पर स्थायी होकर कभी नहीं रह पाता, और नदी पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाती है। माला की चाची को यही भय था कि कहीं माला भी राममोहन के प्रवाह में बहकर बावरी न हो उठे, जो उसे भी एक दिन अपने अतीत के लिये बैठकर आँसू बहाना पड़े।

जिस दिन से राममोहन की परीक्षा आरंभ हुई, उस दिन से वह माला के घर न जा सका। अब माला स्वयं उसके घर आती, और घंटों बैठकर बातचीत किया करती। चाची मन करने पर भी उसे राममोहन से मिलने के लिये मना नहीं कर पातीं। दोनो की घनिष्टता दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही थी। चाची के पास केवल एक ही अस्त्र था—माला का योग्य वर देखकर जल्दी-से-जल्दी ब्याह कर देना। वह वर की तलाश में निरंतर व्यस्त रहतीं।

ताली दोनो हाथों से ही बजती है। स्वाभाविक आकर्षण कभी एक ओर से नहीं होता। माला के हृदय में जितनी गुंजा-

यश थी राममोहन के लिये, उससे कहीं अधिक राममोहन उसे चाहता था, और यही कारण था कि परीक्षा समाप्त होने के बाद भी माला को छोड़कर वह गाँव नहीं जा सका।

गाँव से पत्र-पर-पत्र आते रहे, लेकिन राममोहन एक दिन के लिए भी वहाँ नहीं गया। अंत में एक दिन खीझकर कृष्णमोहन नगर आए, और उससे यह कहकर चले गए कि अब तुम्हें खर्च के लिये घर से एक पाई भी नहीं मिलेगी। बेचई को भी वह अपने साथ ही लेते गए।

राममोहन पर बाप की इस धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह ट्यूशनों की ओर बढ़ा, और इस कार्य में उसे सफलता भी मिली। तीन-चार अच्छे-अच्छे ट्यूशन मिल गए, और उसका खर्च सुचारु रूप से चलने लगा।

× × ×

कंचन की अकुलाहट अब बहुत ही अधिक बढ़ गई थी। राममोहन ने गाँव आना तो दूर रहा, पत्र लिखना भी बंद कर दिया था। जब बाप उसे बिदा कराने आया, वह यह सोचकर उसके साथ चली गई कि वहाँ से साथ में अपने चचेरे भाई को लेकर पति के पास कानपुर जायगी, और फिर जैसे भी होगा, पति को मनाकर ही रहेगी।

मायके में कंचन की स्थिति से सभी खिन्न थे। माँ-बाप ने बहुत समझाया कि जब पति ही उसे पसंद नहीं करता, तो क्या करेगी वह ससुराल में रहकर? यहीं परसोला में उसे अपने माँ-बाप के पास ही रहना चाहिए। खाने-पहनने की क्या कमी है यहाँ पर!

किंतु स्त्री को पति के बिना संसार सूना लगने लगता है। वह जीवित होते हुए भी मृतक के समान हो जाती है। पति के रूठ जाने पर भी जो अपना मान लिए बैठी रहे, वह नारी नहीं,

नारी के नाम पर कलंक है। कंचन पतिपरायणा और स्वाभिमानिनी स्त्री थी। उसे इस समय दुनिया की कोई वस्तु अच्छी लगती ही न थी। माँ-बाप की बातों पर ध्यान न दे वह सीधी पति के पास पहुँची, और वहाँ जाते ही अपने चचेरे भाई को वापस कर दिया।

चैत्र मास के कच्चे-पक्के दिन चल रहे थे। दिन में खूब कस कर गर्मी पड़ती और रात को ठंड होती। रात को नौ बजे कंचन अपने पति-गृह पहुँची थी। उस समय राममोहन छत पर मच्छरदानी लगी मसहरी पर पड़ा सोने का उपक्रम कर रहा था। कुंडी खटकते ही वह नीचे गया और प्रश्न किया—"कौन ?"

कंचन ने जवाब नहीं दिया। वह बराबर कुंडी खट-खटाती रही, आजिज आकर राममोहन ने कुंडी खोल दी। पर वह अंधेरे में पहचान न सका कि यह आगन्तुक स्त्री माला है या कंचन। वह यही समझा, अवश्य यह माला ही होगी। वह प्रसन्न होकर बोला—"बाहर क्यों खड़ी हो ? अंदर आ जाओ न !"

कंचन भीतर प्रविष्ट हुई और जब वह नीचे झुककर अपने स्वामी की चरण-रज माथे से लगाने लगी तब राममोहन एकदम चौंक पड़ा। वह दो कदम पीछे हटकर बोला—"कौन हो तुम ? यहाँ कैसे आई ?" "मैं आपकी दासी कंचन हूँ।" यह कहकर कंचन सिसकने लगी।

लेकिन राममोहन क्रोध से भर उठा। वह ऊपर जाता हुआ ताव में भरकर बोला—"किसने बुलाया था तुम्हें ? क्यों आई हो यहाँ पर ? जैसे आई हो, वैसे ही अभी और इसी समय वापस चली जाओ। मैं तुम्हारी शक्ल भी नहीं देखना चाहता।"

परंतु कंचन ने जैसे पति की यह बात सुनी ही न हो। उसने बाहर के किवाड़ों की कुंडी बंद की और सिसकती हुई पति के पीछे-पीछे चल दी।

ऊपर जा वह राममोहन के पैरों पर माथा टेककर बैठ गई और रोते-रोते बोली—"मैं अपने लिये कुछ भी नहीं चाहती हूँ लेकिन एक भरे-पूरे घर को उजड़ते और तबाह होते नहीं देख सकती। ससुर जी की बात मान लो। आपको भगवान की क़सम है।"

राममोहन के तन-बदन में कंचन की बातें सुनकर आग लग गई। उसने एक ठोकर मारी, और कंचन दूर जाकर गिरी। लेकिन फिर भी वह अपनी बात कहती ही रही—"चाहे मेरी जान ही क्यों न ले लो मगर ससुर जी का कहना न टालो। वह जो कहते हैं, करो। हम लोगों की इसी में भलाई है।"

राममोहन कुछ बोला नहीं। वह क्रोध से नथुने फुलाए बैठा रहा और कंचन ने तभी पास आकर धीरे से ख़ुशामद भरे स्वर में पूछा—"बोलो, क्या कहते हो?"

"अच्छा तो अब तुम शांति से मुझे यहाँ बैठने भी न दोगी।" कहने के साथ ही वह झल्लाकर चारपाई पर से उठ खड़ा हुआ, और बाहर जाने का आयोजन करके बोला—"अब रहो ठाठ से तुम। मैं तो तभी घर वापस आऊँगा, जब तुम यहाँ से चली जाओगी।"

"और मैं भी आज कुछ निश्चय करके आई हूँ।" कहकर कंचन तीर सी उठी और आगे जाकर राममोहन का रास्ता रोक लिया।

"नादान औरत! मुझसे होड़ लेने आई है। नहीं जानती, तेरी हड्डी-पसली अभी चूर-चूर कर दूँगा।" दाँत पीस कर राम-

मोहन ने कहा, और कंचन की ओर ऐसे निहारने लगा मानो कोई भूखा बाघ हो।

"हड्डी-पसली तुड़वाने की बात तो दूर रही, मैं तो जान तक देने को तैयार हूँ।" कंचन आज अपने पर उतर आई थी।

"दुष्टा! चांडालिन!!" कहकर राममोहन ने कंचन का झोंटा पकड़ लिया, और छत पर घसीटता हुआ बोला—"बोल, क्या चाहती है तू?"

"कितना मारोगे? मार लो, कहीं अरमान अधूरे न रह जायँ क्योंकि कंचन बार-बार न मिलेगी। नहीं जानते, वह आज मिटने आई है और मिटकर रहेगी।" कंचन ने यह कह-कर राममोहन की आँखें खोल दीं। उसने कंचन के बाल छोड़ दिए और बैठकर कुछ सोचने लगा।

कंचन पास आई, और पति के पैर पकड़ कर बोली—"मैं आपको पसंद नहीं हूँ, इसका मुझे कोई दुःख नहीं है। आप शौक से मनचाहा ब्याह कर सकते हैं। लेकिन यह कभी नहीं हो सकता कि मेरे सास-ससुर की बात न मानें आप।"

"अच्छे गँवारों से पाला पड़ा है। कैसे जान बचेगी।" एक दीर्घ निःश्वास लेकर राममोहन ने कहा, और फिर आकाश की ओर देखने लगा।

"इसमें क्या शक है। हम लोग गँवार तो हैं ही। लेकिन मेरी बात मानो; हरिगाँव चलो, और ससुर जी द्वारा बताए निर्दिष्ट मार्ग पर चलो। उनको खुश रखकर मनमाना खेल-खेल सकते हो, और नाखुश करके तो फिर कोई दूसरा राह जाता ही नहीं।" कंचन के मुँह से भी बात कहते-कहते एक लंबी साँस निकल पड़ी।

राममोहन ने पत्नी को कुछ जवाब नहीं दिया। वह एकटक छत की ओर देखता रहा। कंचन सिसकती रही।

जिस प्रकार गाँव और नगर के वातावरण में अंतर है। ठीक उसी प्रकार सरल और गंभीर व्यक्ति में। कंचन की जगह पर यदि माला होती, तो राममोहन उसे समझा लेता। लेकिन कंचन को समझाना उसके लिये टेढ़ी खीर थी। अंत में विवश होकर उससे पीछा छुड़ाने के लिये वह उसे लेकर हरगाँव के लिये प्रातः होते ही चल दिया।

१२

चैत्र-पूर्णिमा की तारों-भरी रात में संपूर्ण धरती पर रुपहली चादर बिछ रही थी। आकाश में फूल की थाली-सदृश निकला हुआ चंद्रमा इठला रहा था, मुस्करा रहा था। न गर्मी थी, और न जाड़ा। मौसम गुलाबी था। मस्तिष्क में तरावट और हृदय में मादक स्पंदन भरती हुई शीतल पुरवैया धीरे-धीरे चल रही थी। रात्रि का अभी पहला पहर ही व्यतीत हुआ था कि गाँव का वातावरण एकदम सुप्तावस्था में परिणत हो गया। अंडी के तेल के दिए और मिट्टी के तेल की लालटेनें, सभी का निर्वाण हो गया था। गगन में प्रफुल्ल चंद्र देखकर कंचन मन में फूली नहीं समा रही थी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, कि पति देवता अब शीघ्र ही उसके अनुकूल हो जायँगे। उसने एक अँगड़ाई ली और तभी पड़ोस की अमराई में एक आम्र-वृक्ष पर बैठी हुई कोयल कूक उठी—कुहू! कुहू!!

कंचन पिक के स्वर पर मुग्ध हो उठी। वह धीरे-धीरे अपनी चारपाई से उठी, और पति के कमरे की छत पर सीढ़ी द्वारा चढ़ उसके पैर दबाने लगी। राममोहन को नींद आगई हो, ऐसा नहीं। अतीव क्रोध के कारण वह पलकें मूँदे लेटा था। कंचन के हाथों का स्पर्श पाकर वह सहसा चौंक उठा, और जैसे ही दृष्टि कंचन के मुख पर पड़ी, वैसे ही उठकर बैठता हुआ क्रोध

में भरकर बोला—"क्या उँगली पकड़ कर पहुँचा पकड़ना चाहती हो ?"

"क्या मतलब ?" कंचन तथ्य पर पहुँच कर भी अनजान बन गई।

"मैं कल सबेरे वापस जा रहा हूँ।" राममोहन ने कहा, और फिर चारपाई से उतर कर छत पर टहलने लगा।

कंचन ठगी-सी बैठी रही। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। जब इस प्रकार कई मिनट व्यतीत होगए तब राम-मोहन चारपाई के निकट जा उसकी ओर उन्मुख होकर बोला—"अभी गईं नहीं तुम ?"

"तुम कहते हो, तो जा रही हूँ।" एक दीर्घ उच्छ्वास लेकर कंचन ने कहा, और उठकर खड़ी होगई।

"और सुनो।" राममोहन ने उसे टोका।

"क्या ?" कंचन घूमकर खड़ी होगई।

"तुम्हें यहाँ रहना हो, तो रहो, वरना अपने बाप के घर चली जाओ।"

पति के मुँह से इतना सुनकर कंचन धीर भाव से कहने लगी—"जहाँ बताओ वहाँ चली जाऊँ। मुझे तो कहीं भी ठिकाना नहीं। पैदा होते ही मर जाती, तो अच्छा था।"

"तो अब कौन रोके है तुम्हें ? मरने वाले कहकर और किसी को बताकर नहीं मरा करते हैं।" राममोहन के इस तीखे व्यंग्य ने कंचन के हृदय पर बड़ा ही मार्मिक आघात पहुँचाया, लेकिन फिर भी वह उसे घूँट की तरह पी गई और पति को कुछ भी जवाब दिए बिना ही धीरे-धीरे नीचे उतर गई।

× × ×

श्वेत परिधान के अतिरिक्त अन्य रंगों वाले वस्त्र भी एक रंग से बदल कर दूसरे रंगों में रँगे जा सकते हैं, लेकिन असित

वस्तु को दूसरे रंग में परिणत नहीं किया जा सकता। दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति को कोई भी उसके इरादे के विरुद्ध अपनी ओर नहीं मोड़ सकता। ऐसे ही हठ का भी महत्व है किन्तु उसके अस्तित्व में कहीं पर भी स्थायित्व की झलक नहीं मिलती, और न किसी उद्देश्य के ही दर्शन होते हैं। इसी प्रकार कृष्णमोहन के हठ के सम्मुख राममोहन ने अपने विचारों को नहीं बदला। इस बार दोनों बाप-बेटों में खूब कसकर कहा-सुनी हुई।

"तुम बहू को ठुकराते क्यों हो?" कृष्णमोहन ने भौंहे तरेर कर पुत्र से पूछा।

"इसके जिम्मेदार आप हैं। मैं कुछ नहीं जानता।" राम-मोहन ने भी साहस-पूर्वक जवाब दिया।

"तो तुम मेरी तौहीन करने पर तुले हो। गाँव में तो थू-थू हो ही रही थी; अब परसाला में भी तुम्हारी करतूत सब लोग जान गए हैं। खूब नाम रोशन किया है तुमने बाप का।"

इस प्रकार जब कृष्णमोहन ने पुत्र को धिक्कारा, वह भी चिढ़कर बोला —

"आप पहले अपनी करतूत सम्भालिए, जिससे दो जीवन बरबाद हो रहे हैं। दुनिया जानती है, आप किस कदर अपनी जिद के पक्के हैं।"

"बस बहुत हो चुका, राममोहन! अब मैं तुम्हारे मुँह से एक भी शब्द नहीं सुनना चाहता, क्योंकि इस समय तुम अपनी सीमा के बाहर जा रहे हो।" कृष्णमोहन ने जल-भुनकर कहा।

राममोहन चुप हो गया; लेकिन वे बड़ी देर तक बड़बड़ाते रहे।

रात को जब देवकी ने पुनः कंचन को राममोहन के पास भेजा तब उसने छूटते ही कंचन से कहा—"अगर तुम असल बाप की बेटी हो तो कभी अपनी मनहूस सूरत मुझे न दिख-

लाना। तुम्हारे ही पीछे यह सारा उत्पात मच रहा है, तुम्हें मौत भी नहीं आती।"

कंचन की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे, और वह बुत बनी वहीं पर खड़ी रही।

राममोहन का क्रोध भड़कता ही गया। वह उसके पास आकर बोला "जाती है यहाँ से या नहीं? अगर नहीं गई तो अभी ढकेलता हूँ तुझे नीचे।"

कंचन फिर भी अपने स्थान से टस से मस न हुई। राम-मोहन उसके पास आया; लेकिन फिर, पता नहीं क्या सोचकर पीछे हटा, और जल्दी से नीचे उतर गया। देवकी और कृष्ण-मोहन देखते रहे, और वह बाहर की किवाड़ें खोलकर नंगे पैरों ही घर के बाहर निकल गया।

देवकी ने उसके पीछे आदमी दौड़ाए किंतु कुछ पता ही नहीं लगा कि वह कहां जाकर अदृश्य हो गया।

उसके बाद देवकी ने कंचन को आड़े हाथों लिया: उसने उसका एक कर्म बाकी नहीं रक्खा। खूब जली-कटी सुनाई।

दूसरा पहर बीतते-बीतते सारा घर गहरी निद्रा में लीन हो गया। राममोहन के लिये तो मा-बाप ने यह सोच लिया था, वह कानपुर गया होगा। लेकिन कंचन कुछ और सोच रही थी। उसकी धारणा थी कि वह (राममोहन) आज बहुत गुस्से में है। इसमें कोई संदेह नहीं। आज वह आत्महत्या करके ही रहेगा।

पति ठुकराकर चला गया था सदा-सर्वदा के लिये, और सास उसे प्रताड़णा दे रही थी; फिर भला कंचन किस आशा को लेकर जीवित रहती? वह सोचने लगी, अब उसके जीवन में कुछ भी नहीं रहा है। क्या करेगी वह जिंदा रहकर? उसके

भाग्य में यही बदा था। पति कहता है कि वही सारे उत्पातों की जड़ है। तो क्यों न वह अपने को नष्ट कर डाले! प्रतारणाओं और घृणा के बीच आखिर कब तक पलती रहेगी वह?

ऐसा सोचकर कंचन धीरे-धीरे दबे पांव पति के कमरे में गई, और पहले वहां पर लगे विशाल दर्पण में अपना प्रतिबिंब निहारा। फिर पति के चित्र को बड़ी देर तक खड़ी देखती रही। उसकी आँखों से इस समय अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही थी। पर्याप्त देर के बाद उसने चित्र को नमस्कार किया, और जाते-जाते एक बार फिर पीछे घूमी और चित्र पर दृष्टि जाते ही फूट कर रो पड़ी।

अब कंचन के पास सोचने-विचारने के लिये बिल्कुल समय नहीं था। वह अधीर हो रही थी। त्वरित वेग के साथ वह भंडार घर पहुँची और मिट्टी के तेल का पीपा उठा लाई। फिर पति के चित्र के सम्मुख खड़ी हो उसे अपने कपड़ों पर उडेल लिया, और हंसकर चित्र से कहने लगी—"अब सुख की नींद सोना, प्रियतम! मैं जा रही हूँ। आप सदा-सर्वदा के लिये मुझे ठुकराकर चले गए। अब मैं भी हमेशा-हमेशा के लिये जा रही हूँ।" यह कह कर उसने एक बार पुनः चित्र के सम्मुख मस्तक नवाया, और फिर दियासलाई जलाकर अपने कपड़ों में लगा ली।

कपड़ों में आग लगी। कंचल जलने लगी, लेकिन न तो वह रोई और न चिल्लाई। इस समय रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। बढ़ती हुई लपटें और उमड़ते हुये धुयें से सभी की नींद उचट गई, और सारे घर में कोहराम मच गया, जल्दी दौड़ो! बात की बात में सारा गांव वहां आकर इकट्ठा हो गया, और आग बुझाई जाने लगी। लेकिन कंचन इसके पूर्व ही अपना तन भस्म कर चुकी थी।

१३

संसार कितना विचित्र है, कुछ कहा नहीं जा सकता । एक ओर शहनाई बजती है तो दूसरी ओर मातम मनाया जाता है ; कहीं तो हँसी के फौव्वारे छूटते हैं, और कहीं वेदना अपना बाँध तोड़कर आँसुओं के रूप में बदल जाती है । राममोहन जब माला के घर गया, तो चाची से उसे ज्ञात हुआ कि माला का ब्याह आज तय हो गया है, और अगले सप्ताह वह संपन्न भी हो जायगा । राममोहन के हाथों के तोते उड़ गए । उसने किसी प्रकार अपनी वर्तमान अवस्था को सँभाला, और चाची के सम्मुख दुनियादारी का प्रदर्शन कर माला से बिना मिले ही अपने घर लौट आया । आते ही चारपाई पर वह कटे वृक्ष की नाईं धम्म से गिर पड़ा, और उसके मानस-जगत में उथल-पुथल मच गई ।

राममोहन सोचने लगा, सुख की परिभाषा आखिर क्या है ? क्योंकि यह विरले को ही प्राप्त होता है, और क्षण-भंगुर बन व्यक्ति को जीवन-भर के लिये आर्त कर जाता है । माला से मुझे जीवन की खुशी मिली थी, वह अब पराई होने जा रही है । उस पर मेरा क्या अधिकार ? शायद मेरा जीवन दुनिया में इसी-लिए हुआ है कि जीवन-पर्यंत यातनाएँ ही भोगता रहूँ, और कभी भी संताप की साँस न ले पाऊँ ।

इस प्रकार लेटे-लेटे राममोहन ने सोच-विचर में ही सारा दिन व्यतीत कर डाला । उस दिन फिर वह ट्यूशनों पर भी नहीं जा

सका। वैशाख की मस्ती-भरी हवा शनैःशनैः बहने लगी,और अंबर में तारों की हाट लग गई। किंतु राममोहन को इस वातावरण से कोई प्रयोजन ही नहीं था। वह तकिए में सिर गड़ाए ज्यों-का-त्यों पड़ा था। पड़ोस में किसी के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ था; वहाँ नौबत के नगाड़े और तुरही बज रही थी। राममोहन को ऐसा लगा, मानो ये बाजे उसका उपहास कर रहे हैं। वह अब पड़ा न रह सका। उठ कर खड़ा हुआ और तीव्रता के साथ घर के बाहर जाने लगा।

अभी वह चौखट तक ही आया था कि तारघर का चपरासी उसके सामने अपनी साइकिल रोक कर खड़ा हो गया, और प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बोला—"कोई राममोहन बाबू रहते हैं इस घर में ?"

"जी हाँ, मैं ही हूँ। कहिए, क्या काम है ?" राममोहन ने तत्क्षण ही उत्तर दिया।

"आपका तार है।" कहकर चपरासी ने लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में पकड़ा दिया, और अपनी कापी पर हस्ताक्षर करवा आगे चल दिया।

राममोहन की स्थिति इस समय ऐसी हो गई थी, मानो उसके शरीर में लकवा लग गया हो। तार का लिफ़ाफ़ा खोलते उसे भय लगता था। उसका हाथ काँप रहा था। वह सोचने लगा, आखिर यह तार आ कहाँ से गया ? घर से तो मैं कल आ ही रहा हूँ। और कौन ऐसा सगा-संबंधी है, जो मुझे तार देगा। इस दुनियादारी के लिये तो पिताजी ही पर्याप्त हैं।

राममोहन की आदत थी, वह अशुभ बात और किसी भी कार्य के परिणाम को पहले सोचता था। एक क्षण तक उल्टी दिशा में बहकर उसके विचार पुनः आकर एक स्थान पर केंद्रित हो गए और दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा, हो सकता है कि

मेरे किसी पुराने मित्र ने किसी आवश्यक कार्यवश मुझे याद किया हो। और, ऐसा विचार आते ही उसने लिफ़ाफ़ा खोल डाला। लेकिन तार का फार्म निकालकर पढ़ते ही वह अवाक् हो गया। उसमें लिखा था—"कंचन जल कर मर गई—
कृष्णमोहन।"

राममोहन अधीर हो उठा। उसे ऐसा लगने लगा, वह अब भविष्य में कभी सुखी नहीं रह सकता। उसकी दुनियाँ में सर्वत्र अँधेरा-ही-अँधेरा व्याप्त हो रहा है। अब उस की समझ में आया कि बुज़ुर्ग लोग ठीक ही कहते हैं कि जो दूसरे को सताता है, उसका चौगुना दंड मिलता है। राममोहन पागलों की भांति अंदर जा कमरे में टहलने लगा और विचारों के गहरे समुद्र में डूब गया। वह सोचने लगा, कंचन की मृतात्मा उसे कभी शांति से न बैठने देगी। मैंने एक अबला के साथ अन्याय किया है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

समर्थ व्यक्ति की भूलों पर कोई भी ध्यान देने नहीं बैठता। लेकिन जो सत्य का पुजारी है, उस पर दुनियाँ कीचड़ उछालती घूमती है। गल्तियाँ कृष्णमोहन ने की थीं, और उसकी सज़ा भुगतनी पड़ी राममोहन और कंचन को। यह कहाँ का इंसाफ़ है कि सत्य पर तो परदा डाल दिया जाता है, और मिथ्या की निरर्थक पूजा हुआ करती है। क्या आज के संभ्रांत कहे जाने वाले व्यक्ति का यही स्तर रह गया है? क्या वास्तव में इस युग पर कलियुग का स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा है? यदि ऐसा ही है, तो प्रलय शीघ्र होगा, और आकाश के तारे एक दिन टूट-टूट कर धराशायी हो जायँगे। वसुंधरा की मर्यादा का लोप हो जायगा।

इस प्रकार राममोहन अपने में बहुत कुछ उलझ गया था। उसकी आँखों के सामने कंचन का चित्र नाच रहा था। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो कंचन उसको यह चुनौती देकर गई

है कि मिटने ही का नाम ज़िंदगी है। उसे यह भी याद आया कि एक दिन उसने कंचन से कहा था कि मरने वाले कहकर और किसी को बताकर नहीं मरा करते हैं। कंचन ने वही कर दिखाया।

किंतु राममोहन इस समय अपने को एक अपराधी की दृष्टि से देख रहा था। उसे यह भी आभास हो रहा था, यदि वह जीवित रहा तो आजीवन कंचन के अभिशाप की अग्नि में जलता रहेगा। किसी की ज़िंदगी से खेलकर उसको बरबाद कर देने वाला व्यक्ति कभी सुख और चैन से नहीं रह सकता। एक-न-एक अभाव उसके साथ हमेशा जुड़ा ही रहेगा। यह ध्रुव सत्य है।

राममोहन अपनी भूलों का प्रायश्चित करने के लिये पूर्ण-तया प्रस्तुत था। लेकिन माला के ब्याह वाली समस्या भी उसके हृदय को कचोट रही थी। इससे वह एक विक्षिप्त की भाँति बावला हो किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच रहा था। कभी कुछ सोचता, और कभी कुछ। उसकी मनःस्थिति ही गिरगिट की भाँति अपना रंग बदल रही थी। फिर भला उसे संतोष की अनुभूति कैसे मिल सकती थी?

१४

जहाँ मनुष्य की प्रज्ञा नष्ट हो जाती है, वहाँ फिर उसके विवेक का मूल्य तो कुछ रह ही नहीं जाता। जब व्यक्ति अपना संतुलन खो देता है, तब उसके लिये विश्व में फिर कोई अवलंब नहीं रह जाता! धैर्य्य ही मानव का साहस है, और एक-मात्र अवलंब। उससे विलग होकर वह एक क्षण के लिये भी जीवित नही रह सकता। संयोग की बातें एक दिन निश्चय के रूप में बदल जाती हैं, और पल-मात्र में ही व्यक्ति की धारणा निर्मूल प्रतीत होने लगती है। प्रकृति का एक नियम है, और भाग्य भी सीमा-बद्ध है। फिर पता नहीं मनुष्य अपने मन की क्यों करने लगता है? कौन-सी ऐसी वस्तु है विश्व में, जिसमें परिवर्तन ने अपना अधिकार न जमाया हो। शांति का स्थान प्रलय एक क्षण में ही ग्रहण कर लेती है, और प्रलय के उठते हुए ज्वार-भाटे को शांति अपने रूप में तत्क्षण ही परिवर्तित कर लेती है। समझ में नहीं आता, किसको बुरा कहा जाय और किसको भला?

राममोहन की स्थिति बिल्कुल ऐसी ही हो रही थी। वह एक विक्षिप्त की नाई दृष्टिगोचर हो रहा था। उसमें सोचने और समझने की किंचित्‌मात्र भी क्षमता शेष नहीं रह गई थी। वह उसी दिन अँधेरी रात में घर से निकल पड़ा, और कई दिन तक उसी अवस्था में इधर-उधर भटकता रहा। पूरे-पूरे दिन वह कभी बाग़ में पड़ा रहता। कभी पागलों की भाँति फूल बाग़ में

जाकर चक्कर काटा करता। भूख तो जैसे उसे लगती ही न थी। हाँ, प्यास के नाम पर दिन-रात पानी से गला सींचा करता।

जब कई दिन तक राममोहन माला के घर नहीं गया, तब उसकी चिंता बढ़ी। वह सोचने लगी, आख़िर क्या बात हुई, जो राममोहन नहीं आया; गाँव से लौटने के बाद वह उस दिन मुझ से मिला भी नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं वह मेरे ब्याह के नाम से चौंक गया हो। मगर इसमें चौंकने की ऐसी क्या बात थी? जो कार्य परंपरा की रूढ़ियों से संबंधित हैं, वे तो प्रत्येक अवस्था में संपन्न होंगे ही।

एक साँझ को माला घर से यह सोचकर निकली कि आज वह राममोहन को मनाकर ही मानेगी और जिस तरह वह मानेगा, उसे समझाएगी। वह सोचने लगी, हो सकता है, मैं भी उसके घर नहीं पहुँच पाई हूँ। आज कई दिन हो गए, वह शायद इस से ही रुष्ट हो।

जब माला राममोहन के घर पहुँची, तो देखा कि बाहर से ताला बंद है, और दरवाज़े पर एक ग्रामीण बैठा हुआ है। उसे देखते ही माला ने प्रश्न किया—"तुम यहाँ कैसे बैठे हो?"

"राममोहन बबुआ की तलाश मा दुपहरी से बइठे हनु। पता नइँ कहाँ चले गए हँइ। हम तउ उनके गाँउ से आए हनु।" यह कहने के साथ ही वह ग्रामीण उठ कर खड़ा होगया।

"ऐं! क्या कहा? वे दोपहर से घर में नहीं हैं।" माला एकदम चौंक उठी।

"हाँ! परोसिन से पूँछो तउ वह कहति हँइ कि वह तो तीन-चारि दिन से घरई आयेइ नाइँ हँइ।" ग्रामीण का चेहरा यह कहने के साथ कुछ उदास हो गया था।

अब तो माला के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। वह हैरान होकर बोली—"तो फिर आख़िर गए कहाँ ?"

"हमइ का पता !" कह कर वह व्यक्ति माला की ओर देखने लगा।

"तुम कैसे आए हो गाँव से ?" माला ने उससे प्रश्न किया।

"बहू जरि के मरि गई हँइ, अउर बबुआ का मालिक तारु दियो रहेंइन। वह गयेइ नाहीं। तब वह आजु हमका पठऔ हँइ कि उनका बोलाइ लाओगे।"

अब तो माला और भी अधिक स्तंभित हो उठी कि आख़िर यह सब है क्या ? बहू जल कर मर गई है और राममोहन घर से लापता है। इसमें अवश्य कोई रहस्य है। इन सब बातों से ताज्जुब में पड़कर माला ने उस ग्रामीण से सविस्तार सारी बातें जाननी चाहीं। ग्रामीण तो स्वभाव से ही भोले-भाले होते हैं। वह जो कुछ जानता था, माला से सब कह सुनाया। अब माला संपूर्ण परिस्थिति से विज्ञ हो गई। वह उस आदमी से बोली—"तुम मेरे घर चलो। मैं राममोहन को बुला कर अभी लाती हूँ।"

सीधा-सादा मनसुखा उसके साथ चल दिया। माला ने घर आकर सारा हाल चाची को बतलाया, और उस ग्रामीण को भोजन करा राममोहन का पता लगाने चल दी।

रास्ते में माला सोचती जा रही थी, कितना देवता-पुरुष है राममोहन ! पता नहीं, लोग उसे ग़लत कैसे समझ लेते हैं ? कंचन जल कर मर गई। इसमें दोषी राममोहन नहीं है, बल्कि उसके पिता हैं। क्या हो गया है आज की दुनिया को ? अपराध कोई और करता है, और दण्ड कोई दूसरा भोगता है। क्या यही भविष्य है भारतवर्ष का ? क्या इसी के बल-बूते भारतवर्ष

उन्नति करेगा ? राममोहन तो इतना समझदार व्यक्ति था, आखिर उसे हो क्या गया है। मैं उसे समझाऊँगी, और जिस प्रकार भी वह रास्ते पर आएगा, लाऊँगी। उसकी तो दुनिया ही एकदम बरबाद हो गई है। साथ में उसने मेरी शांति भी मुझसे छीन ली है।

माला इस प्रकार अपने में ही हैरान हो रही थी। वह विचार कर रही थी कि आखिर किस प्रकार और कहाँ पता लगेगा राममोहन का। वह अनिश्चित पथ पर बढ़ती जा रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे। वह उद्विग्न हो अपने स्वजनों का पता लगाने जा रही थी, लेकिन न मार्ग निश्चित था, और न उस की सीमा।

विश्वास ही मनुष्य का एक मात्र सहारा होता है। यदि उसकी आधार-शिला दृढ़ हुई, तो व्यक्ति बहुत कुछ कर ले जाता है। दुनिया का दस्तूर है, लगनशील व्यक्ति कभी-न-कभी सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच ही जाता है। माला की भी आत्मा कह रही थी कि राममोहन उसे मिलेगा अवश्य ! माला का अनुमान ही नहीं, वरन् उसका यह आत्मविश्वास भी था कि जो जिसे प्यार करता है, और दिन-रात उसी के नाम की माला जपा करता है, वह उसे मिलता अवश्य है। इसी आशा के सहारे रात को वह अँधेरी गलियों में भटक रही थी। माला को केवल-मात्र आशा नहीं थी, बल्कि पूरा-पूरा भरोसा था कि कुछ भी हो, राममोहन उसे मिलकर ही रहेगा। इसी विश्वास के सहारे वह अनजान पथ पर आगे बढ़ी चली जा रही थी।

१५

मन जिसे मानता है, और आत्मा जिसे स्वीकार करती है, वह एकन-एक दिन अवश्य मिलकर रहता ह । जो जिसे जी भरकर प्यार कर सकता है, वह उसे एक दिन ठुकरा भी सकता है। राममोहन के प्राणों की डोर माला के हाथ में थी। वह माला को चाहता था, और माला उसे। फिर भला, दुनिया की कौन-सी ऐसी शक्ति थी, जो इन दोनों को मिलने से रोक पाती। माला को अपने तन-बदन की सुधि न थी। वह राममोहन का पता लगाने में इस तरह व्यस्त थी कि उसे मार्ग का भी बोध नहीं हो रहा था कि किधर जा रही है वह।

जी० टी० रोड के रेलवे क्रासिंग पर जब माला पहुँची, तब उसने देखा, दोनों तरफ़ से फाटक बंद हो गया है। वह एक ओर से अंदर प्रविष्ट हुई। ज्ञात हुआ, हावड़ा-एक्सप्रेस आने-वाली है। तभी सहसा उसकी दृष्टि पटरी पर गई, और वह उसी ओर लपककर बढ़ने लगी, क्योंकि वहाँ एक श्वेत गठरी-सी रक्खी हुई थी। ट्रेन की बत्तियों का प्रकाश उस पर स्पष्ट पड़ रहा था। यद्यपि ट्रेन अभी लगभग एक मील के व्यवधान पर थी, फिर भी माला को ऐसा लगता था, वह एक सेकेंड में ही वहाँ आई जाती है। गठरी के पास जाते ही वह एकदम चौंक उठी, और उसके मुँह से अन्यास ही निकल पड़ा—

"राममोहन!"

"माला !" कहकर वह व्यक्ति उठ बैठा, और आर्द्र कंठ से निराशा-भरे स्वर में बोला—"तुम व्यर्थ आईं माला ! चली जाओ। गाड़ी आनेवाली है। मैं अभी अपनी ऐहिक लीला समाप्त करूँगा, क्योंकि अब मेरे जीवन में कुछ भी नहीं रहा।" वह कहने के साथ ही राममोहन ने अपना सिर पटरी पर रख दिया, और लेट गया।

"यह क्या करते हो ! पागल हो गए हो क्या ?" कहकर माला ने उसे पूरी ताक़त के साथ अपनी ओर खींचा।

अबला में बल का अभाव हो, ऐसा नहीं। वह तो समय पड़ने पर देवी से दानवी भी बन जाती है। माला ने राममोहन को अपनी ओर खींच लिया, और तभी हरहराती हुई ट्रेन पटरी पर से पार हो आगे निकल गई।

"यह क्या किया तुमने माला ! मैं अब तक मृत्यु की गोद में पहुँच चुका होता। तुमने अकारण ही रोक लिया मुझे। जाओ, मेरे सामने से चली जाओ। मैं तुम्हारी शक्ल भी नहीं देखना चाहता। तुमने बहुत बड़ा अन्याय किया है मेरे साथ।" कह कर राममोहन उठ खड़ा हुआ, और वहाँ से भागने का उपक्रम करने लगा।

"अच्छा, तो मैं तुमसे पहले दुनिया से जाऊँगी।" कहकर माला पटरी पर अपनी गरदन रखकर लेट गई।

अब तो राममोहन के हाथ-पाँव फूल गए। वह विक्षिप्त की नाईं उसके पास जा अधीर होकर बोला—"ऐसा न करो माला, क्योंकि तुम पराई अमानत हो, और मेरे जीवन की सबसे प्यारी वस्तु।" यह कहकर उसने माला को दोनों हाथों में उठा लिया, और आर्द्र गले से बोला—"वचन दो माला, कभी ऐसा नहीं करोगी।" "और, तुम भी वादा करो, अभी—

इसी समय मेरे साथ घर चलोगे।" माला के तरकस के तीर भी साधारण न थे।

"मंजूर है माला! लेकिन......।" कहते-कहते राममोहन रुक गया। पता नहीं, क्या सोचने लगा था।

माला नीचे उतर पड़ी, और उसके दोनों कंधे पकड़कर बोली—"लेकिन क्या? कहो न, रुक क्यों गए?"

"मैं घर नहीं जाना चाहता, क्योंकि वहाँ परिचित और आत्मीय लोग आएदिन आकर हैरान करेंगे। तुम नहीं जानतीं माला, अब मेरे जीवन में रह ही क्या गया है। मेरी खुशियों का जनाजा उठनेवाला है।" यह कहने के साथ राममोहन बहुत उदास हो गया, और उसकी दृष्टि नील शून्य के चमकते ज्योति-पिंडों की ओर उठ गई।

"ऐसा नहीं सोचा करते। वह आदमी क्या, जो आपत्ति में घबरा जाय। मन छोटा न करो। आओ, मेरे साथ आओ।" कहकर माला ने उसका हाथ पकड़ लिया, और धीरे-धीरे आगे बढ़ चली।

राममोहन उसके साथ-साथ चलने लगा। घर आ गया था। माला ने उससे चाबी लेकर ताला खोला। अभी वह अंदर प्रविष्ट हो ही रही थी कि एक काली छाया उसको अपनी ओर बढ़ती नजर आई। वह चौंककर पीछे हट गई, और प्रश्न किया—"कौन?"

"हम हनु मनसुखा।" उस छाया ने जवाब दिया, और फिर राममोहन की ओर अग्रसर होकर बोला—"पायँ लागी बबुआ।"

उत्तर में केवल राममोहन ने सिर हिला दिया, और तभी माला अंदर जा, बत्ती जला, मनसुखा की ओर उन्मुख होकर बोली—"क्या अभी-अभी आ रहे हो मनसुखा?"

"हाँ। तुम्हारी चाची कहने लगीं कि देखि आओ कोई आओ अभई कि नाईं।" मनसुखा ने सहज स्वर में जवाब दिया। फिर राममोहन की ओर देखकर बोला—"मालिक बोलाओ हैं बबुआ, तुमका! कल्हि सबेरे हमारे साथ चलउ।"

राममोहन मनसुखा की बातें सुनकर जल-भुन उठा। वह खीझकर बोला—"पिताजी से कह देना कि जहाँ कंचन गई है, वहीं वह भी चले जायँ। मुझे अब हरिगाँव नहीं जाना है।"

मनसुखा चुपचाप खड़ा रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल सका!

राममोहन ने फिर कहा—"खड़े क्यों हो? जाते क्यों नहीं?"

मनसुखा राममोहन की क्रोधमयी मुद्रा देखकर सहम गया। उसका आगे एक भी शब्द बोलने का साहस न हुआ। वह धीरे-धीरे चुपचाप घर के बाहर निकल गया।

× × ×

दिए की क्षीण ज्योति अब निर्वाण पर आ गई थी। ऐसा लगता था, राममोहन अब मिटकर ही रहेगा। लेकिन माला अपने सतत उद्योग में लगी हुई थी। उसने राममोहन को अनेक प्रकार से समझाया, किंतु उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।

कोई भी व्यक्ति अपनी चिर-संचित निधि खोने के लिये कभी प्रस्तुत न होगा। माला की भी स्थिति इस समय ऐसी ही थी। वह राममोहन को किसी भी शर्त पर अकेले नहीं छोड़ना चाहती थी। इसीलिये मनसुखा के चले जाने के बाद वह वहीं रह गई। राममोहन ने उससे बहुत कहा—"माला, अपने घर जाओ!" लेकिन वह टस से मस न हुई।

घर में चाची की आकुलता बढ़ती जा रही थी—आखिर क्या बात हुई? माला अब तक क्यों नहीं आई। वह सोचने

लगीं—निकले दाँतों को किसी प्रकार भी अंदर नहीं किया जा सकता। माला का पैर बाहर निकल चुका है। अब वह घर में कैसे बैठ सकती है? कोई दूध-पीती बच्ची तो है नहीं कि उसे दाब-डाँटकर रक्खूँ। ब्याह तय हो गया है, और दूसरों के साथ पूरी-पूरी रात ग़ायब रहेगी, तो दुनियावाले क्या कहेंगे। मारनेवाले का हाथ सभी पकड़ लेते हैं, लेकिन कहनेवाले की ज़बान कोई नहीं थाम लेता। मुझे तो ऐसा लगता है, माला की बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं; वह राममोहन के प्रेम में अंधी हो गई है। अब उसका साहस यहाँ तक बढ़ गया है कि वह पूरी रात घर से ग़ायब रह सकती है। यदि कहीं ससुरालवालों को यह पता लग जाय, तो हाथ पीले होने कठिन हो जायँ।

इस प्रकार चाची अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त थीं। रात आगे बढ़ती जा रही थी, लेकिन माला का अब तक कहीं पता न था।

१६

माला ने पूरी रात राममोहन के घर व्यतीत कर दी, और जब सबेरा हुआ, तो जाने का आयोजन कर उसके सम्मुख जाकर बोली—"अच्छा, तो मैं अब चल रही हूँ।"

"जाओ न। तुम्हें मना किसने किया है?" राममोहन ने उपेक्षा-पूर्वक उत्तर दिया।

"बस, मुझे तुम्हारी ये ही बातें तो अच्छी नहीं लगती हैं।" माला ने तनिक रूठकर कहा।

"तुम नहीं जानतीं माला, मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। मुझ में अब समाई की ताक़त बिलकुल नहीं रह गई है।" अत्यंत उदास होकर राममोहन ने कहा।

"आखिर तुम चाहते क्या हो? मैं तो तुम से हार गई।" माला को यह बात कहते-कहते कुछ हँसी आ गई।

"हैरान न करो माला! मेरा जीवन अब पूर्णतया तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है।" राममोहन ने अत्यंत उदासी के स्वर में कहा।

"अच्छा, जो तुम बताओ, वही करूँगी मैं। मुझे लोक-लाज का भय बिलकुल नहीं।" माला ने उसके छल्लेदार बालों को सहलाते हुए कहा।

"मैं तुम्हें हर समय अपने सामने देखना चाहता हूँ, माला!" यह कहने के साथ राममोहन की आँखें सजल हो आईं।

माला ने उसके आँसू पोंछे, और रोते-रोते बोली—"आज क्या हो गया है तुम्हें ?"

"कुछ नहीं, माला ! तुम जाओ, और मैं तुम्हें फिर जीवित नहीं, मृतक अवस्था में ही मिलूँगा। जाओ जल्दी से, जल्दी चली जाओ।" कहकर जाने के लिये राममोहन ने उसे बाध्य किया।

लेकिन माला जानेवाली कब थी ? वह वहीं डटी रही, और रुआसी होकर बोली—"अब मैं तुम्हारी हूँ, राममोहन ! सदा-सर्वदा के लिये। मुझ पर विश्वास करो।"

"माला, तुम नारी नहीं, देवी हो ! वादा करो, अब यहाँ से कभी न जाओगी।" राममोहन ने एक विक्षिप्त की भाँति उससे पूछा।

"मैं कभी नहीं जाऊँगी; तुम विश्वास रक्खो।" माला ने रोते-रोते कहा, और उसके वक्षःस्थल में अपना सिर छिपा लिया।

इन दोनो का यह व्यापार चल ही रहा था कि चाची आ पहुँचीं। वह आते ही माला से बोलीं—"तुम रात को घर नहीं आई, माला !"

माला के मुँह से उत्तर में एक शब्द भी नहीं निकला।

"क्या बात थी राममोहन !" चाची ने राममोहन से पूछा।

"मैं कुछ नहीं जानता चाची ! आप माला से ही पूछ लीजिए।" यह कहकर राममोहन भार-मुक्त हो गया।

माला ने चाची की गंभीर और आक्रोश-भरी मुद्रा देखी, तो धीरे-धीरे संकोच-भरी वाणी में बोली—"अब मेरा यही घर है, चाची !"

चाची कोई दूध-पीती बच्ची न थीं। वह सारी वास्तविकता समझ गईं। उसी समय वहाँ से चल दीं, और घर में आकर

सोचने लगीं, क्या होना चाहिए माला के लिये ? आखिर माला को हो क्या गया है ? मैंने उसकी सगाई तय कर ली है, और वह राममोहन के गुण गा रही है। वह तो यह भी कहती है कि अब मेरा यही घर है। जो ब्याह तय हुआ है, वह संबंध तोड़ा जा सकता है। राममोहन के साथ ही माला का ब्याह करना पड़ेगा। इसके बिना गति नहीं, क्योंकि दोनो परस्पर अटूट बंधन में बँध चुके हैं। फिर मैं कर ही क्या सकती हूँ। यदि मैं इन दोनो के विरुद्ध में कोई क़दम उठाती हूँ, तो वह उचित न होगा। दुनिया को हँसने का मौक़ा मिलेगा, और घर की बदनामी हो जायगी।

इस प्रकार चाची पूरे दिन और पूरी रात सोचती रहीं। अंत में निष्कर्ष यही निकल पाया कि माला के साथ राममोहन का ब्याह होना आवश्यक है।

× × ×

भाग्य के खेल भी विलक्षण हुआ करते हैं। चाची ने राममोहन के साथ माला का ब्याह कर दिया। माला राममोहन के घर में रहने लगी। चाची दोनो की ओर से पूर्णतया संतुष्ट थीं।

समय बदलते देर नहीं लगती। किसी भाँति कृष्णमोहन को यह पता लग गया कि माला के साथ राममोहन का ब्याह हो गया है।

कृष्णमोहन कानपुर आए, और पुत्र को समझाकर बोले—"घर चलो राममोहन, और बहू को भी ले चलो।"

"यह कभी नहीं होगा पिताजी, क्योंकि मैं कंचनवाले मामले से भरे-भुगते बैठा हूँ।" राममोहन ने तनिक गरम होकर कहा।

आदमी अपने से ही हारता है। कृष्णमोहन पुत्र की बातों का कुछ भी जवाब न दे पाए। पिता-पुत्र में खूब कसकर वाग्युद्ध हुआ। किंतु निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला। विजय नई पीढ़ी के ही हाथ रही। पुरानी पीढ़ी जल-भुनकर रह गई।

१७

दुनिया के दस्तूर को कभी बदला नहीं जा सकता। कंचन के बाप को जब पता चला कि माला स राममोहन का ब्याह हो गया है, तब वह अपने आपे मे बाहर हो गए। चूड़ीदार पाजामा और काली सर्ज की शेरवानी पहने, मुँह में पान भरे वह कृष्णमोहन के पास पहुँचे, और लाल-पीले होकर बोले—"वाह समधी साहब, वाह ! खूब ! आपने तो कमाल ही कर दिया। लेकिन मैं भी कोई अनाड़ी नहीं हूँ।"

कृष्णमोहन एकदम चौंक उठे। उनकी समझ में नहीं आया कि आखिर मामला क्या है ? देवदत्त इतने उखड़े हुए क्यों हैं। वह विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए बोले—"आप कहना क्या चाहते हैं ? साफ़-साफ़ कहिए न।"

"मैं आप पर मुक़द्दमा चलाऊँगा, क्योंकि आपने जबरदस्ती मेरी लड़की को जलाकर मार डाला है, और लड़के का दूसरा ब्याह कर लिया। हलक़े की पुलिस तो आपकी दौलत से दब गई, लेकिन अदालत में ज़ोर नहीं चलेगा।" गुस्से में भरे हुए देवदत्त ने एक साँस में ही ये सारी बातें कह डालीं।

अब कृष्णमोहन को परिस्थिति का बोध हुआ। किंतु वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। रोब के साथ बोले—"जाइए, जो करना है, सो कर लीजिए। ऐसी गीदड़-धमकियाँ मेरे ऊपर तनिक भी असर नहीं डाल सकतीं।"

"उसमें बात ही क्या है, न घोड़ा दूर और न मैदान।"

यह व्यंग्य कसते हुए देवदत्त उठ खड़े हुए, और पैर पीटते हुए बाहर जाने लगे।

उनको जाते देखकर कृष्णमोहन ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। वह बोले—"जाओ, जाओ ऐसे बादल मैंने बहुत देखे हैं, जो केवल गरजकर ही रह जाते हैं, और पानी की उनमें एक बूँद भी नहीं होती।"

"अब यही देख लेना।" कहने के साथ ही देवदत्त वहाँ से झल्लाकर चले गए, और कृष्णमोहन बड़ी देर तक बड़बड़ाते रहे।

रूपा ने सारी बातें अंदर जाकर मा को बताईं। देवकी चिंता में पड़ गई। वह सोचने लगी, हठ और क्रोध का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। पता नहीं, क्या होनेवाला है। इनका (कृष्णमोहन का) तो जैसे माथा ही फिर गया है। लड़का परदेश में पड़ा तकलीफ उठा रहा है, और यह ऐंठ में भरे बैठे हैं। यह जो कुछ भी उलट-फेर हुआ है, सब इन्हीं की बदौलत। अब भी नया बखेड़ा खड़ा करने के लिये तैयार है। यह तो हुआ नहीं, कि देवदत्त को शांति से समझा देते, उलटा उनसे लड़ने लगे।

बड़ी देर तक देवकी इसी प्रकार विचार करती रही। फिर पति को बुलाकर बहुत समझाया। लेकिन भला, कहीं काले के आगे भी दिया जला है। कृष्णमोहन अपने ही हठ पर अड़े रहे। उन्होंने देवकी की एक भी बात न मानी।

× × ×

स्त्री बहुत जल्द अचानक आई हुई आपत्ति से घबरा जाती है। कृष्णमोहन तो निश्चिंत बैठे थे, लेकिन देवकी को चैन नहीं पड़ रहा था। उसने बहुत विचार किया कि क्या करना चाहिए। निष्कर्ष सम्मुख न आते देख और भी हैरान

हो उठी। वह सोचने लगी, देर करने से काम बिगड़ जाने का डर है। मैं शहर जाऊँ, और अपने साथ राममोहन को लिवा लाऊँ। वह जाकर देवदत्त को राजी कर लेगा।

यह सोचकर जेठ की खरी दुपहरी में वह बैलगाड़ी में बैठकर मनसुखा के पास कानपुर के लिये चल दी। साँझ होते-होते वह राममोहन के घर पहुँच गई। मगर यहाँ भी उसका आना व्यर्थ ही रहा। राममोहन किसी भी शर्त पर गांव जाने के लिये तैयार न हुआ।

माला को पति का यह व्यापार बिलकुल नहीं रुचा। वह प्रथम भेंट में ही सास के अधिक निकट आ गई थी। वह गाँव जाने के लिये प्रस्तुत हो उससे बोली—"मैं चलती हूँ मा!"

"तुम्हारे चलने से अगर काम न बना बहू, तो?" देवकी ने यह कहकर उसे उलझन में डाल दिया।

एक क्षण तक माला चुप रही। फिर कुछ सोचकर बोली—"मुझे अपने पर विश्वास है मा।"

अब देवकी को कोई भी आपत्ति करने के लिये संधि न रह गई थी, अतः माला को लेकर उसे गाँव आना पड़ा।

यद्यपि देवकी के ये सब कार्य कृष्णमोहन की इच्छा के विरुद्ध हो रहे थे, फिर भी पता नहीं, वह क्या सोचकर चुप थे। देवकी का साहस अब उससे दो क़दम आगे चल रहा था। वह जिस प्रकार स्वयं नौकर के साथ शहर चली गई थी, वैसे ही रूपा और मनसुखा के साथ एक परदेवाली बैलगाड़ी में बैठाकर माला को परसोला भेज दिया।

पुरुष से अधिक नारी जीभ की कर्कशा होती है, और उसकी अपेक्षा अति विनम्र भी। जो कार्य पुरुष से बिगड़ जाते हैं, स्त्री उन्हें अपनी मृदु वाणी से सुधार लेती है। कृष्णमोहन ने मामले को तूल दिया था, और माला उस जलती आग

को शीतल करने में सफल हो गई। उसने देवदत्त के क्रोध पर विजय पा ली। माला को देखकर देवदत्त को ऐसा लग रहा था, मानो उनकी कंचन ही वापस लौट आई है। वह उसमें समाई के गुण पाकर फूले नहीं समा रहे थे। किसी भी भाँति उसी दिन उसे हरिगाँव भेजने को तैयार न थे। लेकिन माला ने ज़िद की, क्योंकि वह कृष्णमोहन के स्वभाव को भली भाँति जानती थी। जब वह किसी प्रकार न मानी, तो विवश होकर उन्हें उसके साथ आना पड़ा।

दिन ढल गया था, पर गरम-गरम लू अब भी चल रही थी। कृष्णमोहन आराम-कुर्सी के दोनों हत्थों पर हाथ रक्खे बैठे दो-तीन चाटुकारों से बातें कर रहे थे। धीरे-धीरे अँधेरा धरती पर उतर रहा था। सामने चबूतरे के नीचे कच्ची ज़मीन पर नौकर पानी का छिड़काव कर रहे थे। सहसा कृष्ण-मोहन की दृष्टि सामने उठ रहे धूल के बादलों पर पड़ी। वह ध्यान-पूर्वक उधर देखने लगे। आगे-आगे घोड़ी पर एक व्यक्ति था, और उसके पीछे एक बैलगाड़ी चली आ रही थी। सबकी निगाहें उसकी ओर उठ गईं। देखते-देखते घोड़ी आकर कृष्ण-मोहन के चबूतरे के पास रुक गई, और उस पर से जो व्यक्ति उतरा, वह कोई और नहीं, देवदत्त थे। कृष्णमोहन मुँह बाए अवाक् उनकी ओर देखते रह गए।

१८

देवदत्त माला को हरिगाँव छोड़ गए। देवकी ने उसे फिर कानपुर नहीं जाने दिया। माला ने राममोहन को पत्र लिखा कि मा नहीं मानतीं, इसलिये यहाँ रहना ही पड़ेगा।

नियति का चक्र अपनी कीली पर सदा-सर्वदा की भाँति घूम रहा था। विश्वास और अविश्वास में होड़ लग रही थी। एक ओर निर्वाण था, तो दूसरी ओर निर्माण। समय का पहिया भी अपनी अबाध गति से चक्कर लगा रहा था। दिन-रात, दुःख-सुख, आदि और अंत, सभी परिवर्तन की तूलिका से रँगे जारहे थे। माला को प्रसव होने को था, और वह चाहती थी कि इसके पूर्व ही वह शहर पहुँच जाय। लेकिन मन-चाहे कार्य तो बहुत कम हुआ करते हैं। वह कानपुर जाने के लिये सोचती ही रह गई, और शिशु का जन्म हरिगाँव में ही हो गया।

देवकी की ख़ुशी का पारावार न था। उसने ख़ूब ख़ुशी मनाई, और सारी बिरादरी को भोज दिया। नाच और गाने का भी आयोजन किया गया।

कृष्णमोहन को यह सब बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। उन्हें अपनी ही धुन सवार थी कि किसी प्रकार माला यहाँ से जल्दी-से-जल्दो चली जाय। उनका दुर्व्यवहार दिन-प्रति दिन माला के प्रति बढ़ता ही जा रहा था। वह उन्हें फूटी आँखों न भाती थी।

चित्त जब दुखी होता है, तो मनुष्य एक रोगी के सदृश प्रतीत होने लगता है। उसके हाथ-पैर एकदम ढीले पड़ जाते हैं। माला की भी यही स्थिति थी। अपने प्रति ससुर का दुर्व्यवहार उसे बहुत ही खलता था। न तो वह ठीक तरह से खाती थी, न पीती थी। उसे कृष्णमोहन की यह बात हमेशा खटका करती। वह कहा करते, न-जाने कौन जात है। शहर के ब्राह्मण तो बहुरूपिया होते हैं। ऐसे ब्याह करने से ही तो कुल में कलंक लगता है, और सारा परिवार-का-परिवार चौपट हो जाता है।

कोई भी कार्य हो उसका अंत और परिणाम, दोनो निश्चित हैं। चिंता और क्षोभ मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। माला को सौर-गृह में ही ज्वर आने लगा, और वह रुग्ण रहने लगी। देहात में वैद्य के अतिरिक्त अन्य कोई साधन उपलब्ध न था। इसलिये वैद्य का ही उपचार चलता रहा। लेकिन कुछ भी लाभ नहीं हुआ। ज्वर बढ़ता गया।

कंचन के पिता को यह समाचार मिला, वह हरिगाँव आए, और माला को अपने साथ लिवा ले गए।

परसौला जाकर देवदत्त ने माला से सारी वास्तविकता जाननी चाही। लेकिन माला के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। वह भली भाँति जानती थी कि दूसरे के सामने अपना दुःख रोने से कोई लाभ नहीं। किंतु जब देवदत्त की आँखों में उसकी दशा देखकर आँसू आ गए, तो माला का हृदय उन्हें न देख सका, और धीरे-धीरे उसने सारी स्थिति उनके सामने रख दी। वह माला को गले से लगाकर खूब रोए, और रोते-रोते बोले—"मेरी बच्ची बीमार रहे, और मैं चैन से बैठूँ। यह कभी

नहीं हो सकता। चिंता न करो रानी ! मैं तुम्हें स्वस्थ करके ही दम लूँगा।"

माला ने उनके वक्ष में अपना सिर गड़ा दिया, और आर्द्र कंठ से बोली—"पिताजी !" उसके बाद फूट-फूटकर रोने लगी।

१९

राममोहन को देवदत्त का पत्र मिला कि माला आजकल उनके घर में है, और बहुत बीमार है, पत्र पाते ही परसोला चले आओ। राममोहन की जान सूख गई। वह भागा हुआ चाची के यहाँ गया, और सारा हाल बतलाकर बोला—"मैं अभी गाँव जा रहा हूँ। कल दोपहर तक माला को लेकर लौट आऊँगा।"

राममोहन चला गया, और चाची मन-ही-मन माला के स्वस्थ होने के लिये देवी-देवता मनाने लगीं। राममोहन भी रास्ते में सोचता जा रहा था कि एक बाप कंचन का है, जो अतीत की सारी बातें भूलकर माला को अपनी लड़की की तरह कलेजे से लगाए है, और एक मेरे पिता हैं, जिनकी इंसानियत अब तक सो रही है। मनुष्य को इतना निर्दयी और कठोर नहीं होना चाहिए। मुझे खर्च भेजना बंद कर दिया था, कोई बात नहीं; रिसर्च अगले साल तक कर ही लूँगा। लेकिन देवी-स्वरूप माला के साथ भी दुर्व्यवहार किया, यह सरासर अन्याय है। अहम् आदमी को ले डूबता है। वह सावन में अंधे हुए हैं, इसलिये सब हरा-ही-हरा दिखाई देता है। एक-न-एक दिन उनका मद अवश्य चूर होगा।

गाँव निकट आ गया था, किंतु राममोहन की विचार-धारा का क्रम न टूटा। उसे आज कृष्णमोहन पर इतना अधिक आंतरिक क्षोभ था, जिसकी कोई सीमा नहीं। हठ के पूरे और

दक़ियानूसी विचारों के अपने पिता से उसे कोई श्रद्धा और सहानुभूति न रह गई थी। पहले वह उन पर केवल रुष्ट ही था, लेकिन आज उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो, अब इस जीवन में उसे उनका मुँह नहीं देखना है।

गाँव पहुँचते-पहुँचते साँझ हो आई थी। सरदी के आधिक्य से चारों ओर कोहरा छा रहा था। बसेरे पर जानेवाली चिड़ियाँ चीं-चीं करती हुईं अपने आवासों पर लौट रही थीं। ठंड से ठिठुरते हुए कृषक अपने सरसों, गेहूँ और चने के खेतों में पड़ी मड़ैयां में बैठे चिलमों में तंबाकू भर रहे थे, और चरागाह से लौटते हुए चरवाहे बिरहा गाते जाते थे। गाँव में जगह-जगह पर अलाव जल रहे थे, जिन्हें घेरकर लोग ऐसे बैठे थे, मानो किसी मदारी का तमाशा देख रहे हों। देवदत्त के दरवाज़े पर बड़ी-सी लालटेन जल रही थी। तभी राममोहन ने धीरे-धीरे घर के अंदर प्रवेश किया।

माला चारपाई पर लेटी थी, और उसके पास ही कुर्सी डाले देवदत्त बैठे थे। पास ही उनकी पत्नी तथा दो-एक और स्त्रियाँ भी थीं। राममोहन को देखकर माला ने उठने का प्रयास किया, लेकिन देवदत्त ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया।

राममोहन ने देखा, माला काली पड़ गई और सूखकर काँटा हो गई है।

"प्रसूत का ज्वर होता ही ऐसा है।" यह कहकर देवदत्त ने उसे समझाया, और फिर बोले—"वैद्य का इलाज चल रहा है। क़स्बे से दो-तीन बार डॉक्टर को भी लाया, मगर उससे कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा। वैद्य का कहना है कि यह बुख़ार तो धीरे-ही-धीरे जायगा। चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं।"

लेकिन राममोहन को ऐसा लग रहा था कि माला को प्रसूत

का ज्वर नहीं, दिक के प्रत्यक्ष लक्षण हैं । वह बोला—"मुझे तो इनकी हालत अच्छी नहीं मालूम पड़ती । कल सबेरे शहर ले जाना होगा।"

इस पर देवदत्त ने आपत्ति की । वह उसकी ओर देखकर बोले—"इधर तीन-चार दिन से हालत ज्यादा बिगड़ गई है । ऐसी हालत में मैं शहर ले जाने की राय नहीं दूँगा । दो दिन और देख लो, उसके बाद न होगा, तो शहर से ही कोई डाक्टर बुलवा लूँगा।"

विवश होकर राममोहन को उनकी बात माननी पड़ी ।

मनुष्य के मन में जब कोई आशंका घर कर लेती है, तो वह निश्चिंत होकर एक क्षण के लिये भी बैठ नहीं पाता । और, जिस बात का उसे गुप्त भय होता है, वह दृश्य बनकर एकाएक सामने आ जाती है । अभी अच्छी तरह सबेरा हो भी न पाया था कि माला का ज्वर एक सौ एक डिगरी से बढ़कर एक सौ चार डिगरी हो गया । उसका सारा शरीर आग की भाँति जलने लगा, और प्रलाप में न-जाने क्या-क्या बकना उसने आरंभ कर दिया ।

देवदत्त ने वैद्य के घर आदमी दौड़ाया । वैद्य ने आकर नाड़ी देखी, और सबको संतोष दे, रस की चार पुड़ियाँ देकर चले गए । लेकिन इससे माला की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । प्यास से उसका गला सूख रहा था । कंचन की मा बराबर उसके मुँह में चम्मच से पानी डालने में व्यस्त थी ।

देवदत्त बहुत दुखी हुए । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें । एक ओर जा, खिन्न-मन बैठकर सोचने लगे । क्या शहर से किसी अच्छे डाक्टर को बुलाना चाहिए ? या माला को स्वयं ही शहर ले जाया जाय ? मगर यह ठीक नहीं । साथ में छोटा बच्चा है, कौन संभालेगा उसे ? माना कि माला

की चाची हैं वहाँ, लेकिन वह अकेले क्या-क्या कर लेंगी? मैं तो हैरान हूँ। क्या करूँ? यदि……।

अभी वह ऐसा सोच ही रहे थे कि उनके पास राममोहन आकर खड़ा हो गया, और उन्हें उलझन में पड़ा देखकर बोला—"माला को अभी शहर ले चलना होगा।"

"नहीं, ऐसी भूल मैं तुम्हें नहीं करने दूँगा।" पता नहीं, देवदत्त के ध्यान में एकाएक यह बात कैसे आ गई।

"फिर?" धीरे से राममोहन ने पूछा।

"रुपए ले जाओ, और अपने साथ ही शाम तक किसी अच्छे डॉक्टर को लिवा लाओ। देर करने की जरूरत नहीं।" यह कहकर वह जल्दी से अपने कमरे में गए, और तिजोरी खोलकर उसमें से एक मोटा-सा नोटों का बंडल उठा लाए।

राममोहन ने नीची दृष्टि किए रुपयों का बंडल उनके हाथ से ले लिया, और द्रुत गति से घर से बाहर निकल गया।

२०

राममोहन नगर पहुँचकर पहले सीधे चाचा के घर गया, और वहाँ से उन्हें अपने साथ लेकर प्रसिद्ध डाक्टर कौल के यहाँ पहुँचा। किसी प्रकार उसने डाक्टर को अपने साथ गाँव चलने के लिये राज़ी कर लिया। उसे माला के पास पहुँचने की इतनी जल्दी थी कि चाहता था, डाक्टर-सहित पर लगाकर उड़ जाय। बस पर आकर अभी वह बैठा ही था सहसा कृष्णमोहन भी आकर सवार हो गए। उसने उनको देखकर अपना मुँह घुमा लिया। कृष्णमोहन ने उसे टोका, किंतु वह मौन रहा।

चाहे जितना कठोर-से-कठोर व्यक्ति क्यों न हो, लेकिन संतान को सम्मुख देखकर उसका वात्सल्य उमड़ ही पड़ता है। यदि राममोहन बाप से पहले बोलता, तो शायद कृष्णमोहन अपनी ऐंठ में अकड़े ही बैठे रहते। मगर उसकी ओर से उपेक्षा के भाव देखकर उनका अंतःस्नेह फूट पड़ा। नेत्र गीले हो आए, और कंठ भर आया। वह अतीव स्नेह से उसकी ओर उन्मुख होकर बोले—"शहर में कुछ काम था, वहीं से वापस आ रहा हूँ। घर ही चल रहे हो न? बहू की तबियत अब कैसी है? मुझे तो कुछ खबर ही नहीं मिली।"

किंतु राममोहन ने बाप की एक भी बात का उत्तर नहीं दिया। उसके जी में तो आया, ऐसा मसालेदार जवाब दे कि आगे उनकी एक भी शब्द बोलने की हिम्मत न पड़े। लेकिन

फिर यह सोचकर रह गया कि यहाँ चार आदमी तमाशा देखेंगे, अतः चुप रहना ही उचित है।

कृष्णमोहन कहते रहे—"ग़ल्तियाँ छोटों से ही नहीं, बड़ों से भी हुआ करती हैं। बाप को गुस्सा तभी आता है, जब लड़का कहा नहीं मानता। तुम नहीं जानते, जो जिसे दुलार कर सकता है, वह उसे पीट भी सकता है, और उस पर क्रोध भी कर सकता है। बहुत हो गया, अब मेरे साथ घर चलो, और बहू को भी लिवा लाओ।"

अब राममोहन से चुप न रहा गया। वह आक्रोश में भर-कर बोल उठा—"बहू तो मर रही है। हाँ, अलबत्ता कल उसकी लाश को घर पर उठा लाऊँगा। इसके पहले तो वह अब उस घर में नहीं जा सकती।"

"ऐसा न कहो लाल!" कहते-कहते कृष्णमोहन स्नेह-विह्वल हो उठे।

राममोहन कुछ उत्तर देने जा ही रहा था कि सहसा सामने से आती हुई दूसरी बस की टक्कर उसकी बस से हो गई। इस समय दोनों बसें गंगाजी के पुल पर थीं। राममोहनवाली बस उलट गई, और गंगाजी में जा गिरी। बात-की-बात में वहाँ सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए। इतना अच्छा था कि जहाँ बस गिरी थी, वहाँ पानी न होकर रेती थी। घायलों को अस्पताल पहुँचाने की व्यवस्था होने लगी। बस पर बैठे हुए यात्रियों में से कोई ऐसा न बचा था, जिसके चोट न आई हो। दो-तीन तो उसी समय काल के गाल में समा गए। राम-मोहन के भी सांघातिक चोट आई थी, और कृष्णमोहन भी बुरी तरह घायल हो गए थे। चाची और डाक्टर के घाव साधा-रण थे।

मनुष्य के वश की और तो सारी बातें हैं, लेकिन जीवन और मृत्यु पर केवल आदि शक्ति का ही अधिकार है। अस्पताल

पहुँचते-पहुँचते राममोहन ने दम तोड़ दिया। कृष्णमोहन ने देखा, उनका पुत्र दुनिया से उठ गया, तो वह बच्चों की भाँति फूटकर रो पड़े, और तत्क्षण ही बेहोश हो गए। चाची छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। अभी इधर यह कारुणिक दृश्य चल ही रहा था कि दो घायल और काल के गाल में चले गए। सर्वत्र मौत का आतंक छा गया, और तमाशाइयों की आँखों से भी टप-टप आँसू चूने लगे। ऐसा लगता था, मानो आज मौत प्रचंड हो अपना नग्न नृत्य कर रही है।

२१

माला की चाची का तार पाकर कंचन के पिता देवदत्त शहर पहुँचे। उनके साथ परिवार के दो-तीन व्यक्ति भी आए थे। आते ही उन्होंने उनके साथ चाची और डॉक्टर को परसोला भेज दिया, और इस बात के लिये सबको मना कर दिया कि माला को राममोहन की मृत्यु का पता न लगने पाए।

कृष्णमोहन की नम्रता से देवदत्त के मन का मैल बिलकुल धुल गया था। वह एक दिन नगर में रहते, तो दूसरे दिन माला को देखने गाँव चले जाते। ससुर और बहू, दोनो का उपचार चल रहा था। ईश्वर की कृपा से दोनों ही धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। क्यों न करते, अब तो सारी हाय-हाय राम-मोहन पर बीत गई थी।

एक महीने तक कृष्णमोहन अस्पताल में रहे। उसके बाद जब स्वस्थ होकर घर आए, तो देवदत्त उनको अकेले देखने गए। उनको देखकर कृष्णमोहन एक दुखिया की भाँति आर्त स्वर में बोले—"कैसी तबियत है अब बहू की?"

"क़रीब-क़रीब अब अच्छी ही है। हाँ, अभी कुछ समय जरूर लगेगा।" देवदत्त की वाणी में भी उनके प्रति हार्दिक सहानुभूति उमड़ आई थी।

"मैंने बड़ा अन्याय किया है अपने बच्चों के साथ देवदत्त! इसके लिये ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। अब तो बहू और बच्चे को मेरे पास ले आओ।"

कृष्णमोहन की इस बात का देवदत्त ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह सिर झुका कर कुछ सोचने लगे।

"मैं समझ गया देवदत्त, तुम क्या सोच रहे हो।" कृष्ण-मोहन ने यह कहकर उनकी ओर देखा, और फिर बोले—"तुम्हारी धारणा ग़लत है। मैं इस जीवन में अपनी बहू के साथ अब कभी दुर्व्यवहार नहीं कर सकता। तुम एक बार उसे ले तो आओ मेरे पास।"

"अच्छा।" कहकर विचार-मग्न देवदत्त वहाँ से चले आए।

× × ×

विधवा माला जब अपनी जर्जर काया लेकर पति-गृह पहुँची, तो देवकी उसे छाती से लगाकर खूब रोई, और कृष्णमोहन भी आँसू बहाने लगे। माला स्वस्थ अवश्य हो गई थी, लेकिन अभी वह इतनी दुर्बल थी कि उसे एक क़दम भी चलना भार-स्वरूप प्रतीत होता था। शिशु देवदत्त की गोद में था। कृष्णमोहन ने उसे लेकर अपने अंक में छिपा लिया। लेकिन वह रोने लगा। माला ने साहस करके उसे गोद में ले लिया, और फिर घूमकर देवदत्त की गोद में देते हुए बोली—"चलिए पिताजी!"

"कहाँ?" कृष्णमोहन एकदम चौंक उठे।

माला कुछ उत्तर दे, इसके पूर्व ही देवदत्त के मुँह से निकल गया—"एक अमानत मैंने आपको सौंपी थी; उसकी आप रक्षा न कर सके। एक बार जो भूल हुई है, दुबारा वह मुझसे न होगी। माला परसोला में रहेगी।" देवदत्त का अंतर क्षोभ से भर आया था।

कृष्णमोहन के पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। वह अवाक् हो देवदत्त की ओर देखने लगे, और देवदत्त ने माला की ओर उन्मुख होकर कहा—"आओ, बेटी, चलें।"

माला उनके पीछे-पीछे चल दी। तभी कृष्णमोहन उठकर भागे, और देवदत्त का रास्ता रोक सामने खड़े होकर घबराए हुए स्वर में बोले—"यह कभी नहीं होगा, बहू मेरी आँखों की पुतली बनकर रहेगी। लाओ, बच्चे को मुझे दे दो।"

देवदत्त माला की ओर देखने लगे, और माला उनकी ओर। कृष्णमोहन अधीर हो रहे थे। वह माला के सामने जा आँखों में आँसू भरकर बोले—"तुम नहीं जानतीं बहू, अब मेरी ज़िंदगी की साँझ आ गई है, अब मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा।" कहते-कहते दो बूँद आँसू उनकी आँखों से धरती पर चू पड़े।

माला के भी नेत्र आर्द्र हो आए। उसने देवदत्त पर पुनः एक दृष्टि डाली। देवदत्त उसका आशय समझ गए। उन्होंने बच्चे को कृष्णमोहन की गोद में दे दिया, और धीरे-धीरे घर से बाहर निकल आए। माला उनके पीछे-पीछे दरवाज़े तक आई, और जब तक वह दृष्टि से ओझल न हो गए, खड़ी देखती रही।